

34/43

श्री गीतगोविन्द
आम्नाय-ग्रन्थालय,
परतन्त्रि. करीबी
वाराणसी-5

आम्नाय-ग्रन्थालय,
परतन्त्रि. करीबी
वाराणसी-5

ग्रन्थालय
वाराणसी-५

34/43



आम्नाय-ग्रन्थालय,

मल्लानाथ, कशी

वाराणसी-5



ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ परतन्त्रि, ~~पुस्तक~~

श्री ५० जयदेव कवि विरचितम्

वाराणसी-

श्रीगीतगोविन्दम्

राधाविनोदकाव्यम् ।

तद्वयं

श्री मोरेश्वरराव देशमुख विरचित

भाषाटीकया समलंकितम् ।

प्रकाशकः—

बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर,

कर्चाहीगली, बनारस सिटी

मूल्यम् ॥=॥ रु०

35 4/8

ॐ श्री कृष्णाय नमः ॐ

श्री पं० जयदेवकविरचितम्—

श्रीगीतगोविन्दम्

राधाविनोदकाव्यञ्ज ।



तच्च

श्री मोरेस्वरराव देशमुख विरचित

भाषाटीकया समलंकृतम् ।



मूल्यम् ॥=) ११)

लि
ग
दि

श्री राधाकृष्णार्प्या नमः ।

* अथ गीतगोविन्दम् *



प्रथमः सर्गः १ ।

मेघमैन्दुरमंवरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमे-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

अगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी मित्रमण्डली व्रजराजके
थ वृन्दावन की मनोरम छटा देखते देखते कुछ दूर निकल
। सहसा गगन मण्डल मेघों से आच्छादित हो गया । उस
य तमाम वृक्षों की सवन पंक्तियों से वनस्थली काली काली
जाई देने लगी । नन्द ने सोचा :—सायंकाल होना ही चाहता
। जंगल का मामला है कृष्ण रात में भयभीत हो जायेंगे-
लिये इन्हें पहले से ही घर पहुँचा देना ठीक होगा । उन्होंने
ग के ऊपर अधिक स्नेह रखने वाली राधा से कहा—तुस
ते और इन्हें भी साथ में ले जाकर घर पहुँचा देना । नन्द
आज्ञा मिलते ही राधा कृष्ण के साथ चली । कालिन्दी का

४

श्रीगीतगोविन्दम्—

[भाषाटीका]

चट, सधन कुञ्जों से अलंकृत वनपथ तथा सुखदायी एकान्त
इन सुविधाओं से परम प्रसन्न कौतुको श्रीकृष्ण की प्रेममूर्ति
राधा के साथ सम्पन्न क्रीड़ाये संसार में अपनी समता न
रखती ॥ १ ॥

वसन्ततिलकावृत्तम् ।

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा पद्मावतीचा
राचारणचक्रवर्ती ॥ श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमे
करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

श्री सरस्वती की अद्भुत लीलाओं से अलंकृत हृदय तथा
राधा के चरण सेवकों में सर्वप्रधान श्रीजयदेव कवि, भगव
श्रीकृष्ण चंद्र की प्रेम लीलाओं से परिपूर्ण इस गीत गोविन्द ना
प्रबन्ध का निर्माण करते हैं ॥ २ ॥

द्रुतविलम्बितेन ।

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकला
कुतूहलम् ॥ मधुरकोमलकान्तपदावलं शृणु त
जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

हे भक्तजनों ! यदि श्रीकृष्णचन्द्रजी का ध्यान करके
अपना हृदय शीतल करना चाहो और वृन्दावनविहागीकी
रासलीला व कानन-क्रीड़ा सुनने की इच्छा करो तो जयजय

कल्पपेतम्]

प्रथमसर्गः ।

कविराज विरचित गीत गोविन्द नामक पुस्तक का पाठ
श्रवण करो ॥ ३ ॥

शार्दूलविक्रीडितेन ।

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः संदर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरुहद्रुतेः ॥

शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-

मेस्पद्धीं कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयोकविः दमापतिः

कवि उमापतिधरजी वाक्यविन्यास में श्रेष्ठ थे, शरण कवि
दुरुह रचना में प्रसिद्ध थे, श्रीगोवर्धनाचार्य जी शृङ्गार रस पूर्ण
कविता करने से मानको प्राप्त हुए थे, इसी भाँति धोयी
कविराज को सुनने मात्र से ही याद हो जाता था किन्तु श्री
जयदेव कविराज विशुद्ध रचना के लिये आदरणीय हैं ॥ ४ ॥

भालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ॥

विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥

केराव धृतमीनशरीर जय जगदोशहरे ॥ ध्रुव० ॥ १

हे भगवन् ! प्रलयके समय आपने बिना परिश्रम समुद्रतरण
के लिये नौका की तरह चेष्टित मीन रूप धारण करके वेदशास्त्र
की रक्षा की थी । हे मीन रूप धारी भगवन् ! तुम्हारी जय हो,
जय हो, जय हो, ॥ १ ॥

क्षिति रति विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे ॥

धरणि धरण किणचक्रगारिष्ठे ॥

केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥ २ ॥

हे भगवन् ? आपने अपने अति विपुलतर पीठ पर पृथ्वी वाराण किया था, इसी कारण आपके पृष्ठ पर व्रण (घाव) का निह है, हे जगदीश ? आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ॥

शशिनि कलंककलेव निमग्ना ॥

केशव ! धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

हे केशव ? आपने सूकर रूप धारण करके प्रलय काल से पृथ्वी का निज दाँतों से उद्धार किया । इसी कारण आपके दाँतों में प्राप्त पृथ्वी कलंक रेखा के सदृश शोभायमान हो रही है, हे जगदीश ? तुम्हारी जय हो जय हो जय हो ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् ॥

दलितहिरण्यकरिपुतनुभृङ्गम् ॥

केशव ! धृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

हे केशव ? आपने नृतिहरूप धारण कर अंष्ट करकमल का आश्चर्य पैदा करने वाले अद्भुत शृङ्गरूप नखों को धार किया और उन्हीं नखों से दैत्यराज हिरण्यकश्यप का विनाश किया इस कारण हे भक्तवत्सल भगवन् ? तुम्हारी सदैव जय हो जय हो ॥ ४ ॥

का

समेतम्]

प्रथमः सर्गः १ ।

७

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ।

पदनखनोरजनितजनपावन ॥

केशव ! धृत वामनरूप जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥

हे केशव ? आपने वामन रूप धारण करके बलि को छला था और आपही ने अपने चरणकमलों से निकले हुए जल से समस्त लोगों को पवित्र किया था, हे भक्त जन रक्षक ? तुम्हारी जय हो जय हो जय हो ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं ।

स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ॥

केशव ! धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

हे परशुरामरूप धारण करने वाले भगवन् ! आपने परशुराम रूप धारण कर कठोरात्मा क्षत्रियों का विनाश करके उन्हीं के रुधिर से पृथ्वी को वृक्ष किया था, हे भगवन् ? हे जगदीश ? आपकी जय हो ॥ ६ ॥

वैतरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनोयम् ।

शमुखमौलिवलिं रमणीयम् ॥

केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आपने समस्त लोगों पर दया करने के हेतु रामरूप धारण करके सर्व देवताओं को प्रसन्न करने के लिये राक्षसराज वन का संहार किया था, हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ॥ ७ ॥

८

श्रीगीतगोविन्दम्-

[मषादीका]

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ।

हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥

केशव ! धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! आपने हलधर रूप धारण करके मेव सदा नील वस्त्र धारण किया तब आपके शुभांग में वह नीलवसन हलभीता यमुना का स्वरूप शोभायमान हुआ था, हे जगदीश आपकी जय हो ३ ॥ ८ ॥

निन्दसि यत्रविधेरहह श्रुतिजातम् ।

सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥

केशव ! धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! आपने हो जीवों पर दया करने के हेतु बुद्ध रूप धारण करके, पृथ्वी में जितने यज्ञ पशुहिंसाप्रघात हुआ करते थे उनकी निन्दा की, हे बुद्धरूपधारो भगवन् आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करालम् ।

धूमकेतुमिव किमपि करालम् ॥

केशव ! धृतकलिकशरीर जय जगदीश हरे ॥ १० ॥

हे भगवन् ! आपने दुष्ट म्लेच्छों के नाश हेतु धूमकेतु स्वरूप खड्ग धारण किया था । हे भगवन् ! आरकी जय हो जय हो जय हो ॥ १० ॥

[तम्]

द्वितीयः सर्गः २ ।

९

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ।

शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ॥

केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

श्री जयदेवरचित यह स्तोत्र सब स्तोत्रों में श्रेष्ठ है । हे भक्तगण ! इसको भक्ति भाव युक्त प्रीति पूर्वक आनन्द से श्रवण करो । हे दश अवतारों को धारण करने वाले भक्तजन दयालु ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ११ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे प्रथमः प्रबन्धः ॥ १ ॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्धिभ्रते

दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।

पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते

म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः । १

हे भगवन् ! आपने मीनरूप धारण कर प्रलय जल से वेद शास्त्र की रक्षा की, कूर्मरूप धारण कर पृथ्वी को पीठ पर वहन किया, वाराहरूप धारण कर निज दन्तों से पृथ्वी को पानी में से उठाया, नृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का नाश किया, वामन रूप धारण कर बलिराज को छलन किया, परशुराम रूप धारण करके क्षत्रियों का नाश किया, राम रूप धारण करके रावण का वनन किया, हलायुध रूप धारण करके यमुना को खींचा, बुद्धरूप धारण करके अहिंसा धर्म को प्रकाशित किया और अब कल्कि रूप धारण करके महाभ्रष्ट

१०

श्रीगीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका]

म्लेच्छ लोगों का विनाश करते हैं । अतः हे दश विधरूप धारण करने वाले ! आपके चरण कमलों में मेरा नित्य प्रति साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम हैं ॥ १ ॥

गुर्जररागे प्रतिमंठताले अष्टपदी ॥ २ ॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।

कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ध्रुव० ॥ १ ॥

हे भगवन् ! आप लक्ष्मी देवी के सुन्दर वक्षस्थल से क्रीड़ा करते हैं, आप कर्णभूषण से शोभायमान हैं आपके कण्ठ में वनमाला अत्यन्त सुशोभित हो रही है, हे कमलाकान्त ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।

मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे नारायण ! सूर्यमण्डल के भूषणस्वरूप समस्त लोगों की गति भक्ति और मुक्ति देने वाले आपही, सन्त भक्तजनों के हृदय में हंस सदृश विराजमान रहते हो । इससे हे भगवन् आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

कालियविषधरगंजन जनरंजन ए ।

यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! अपने कालिय नाग का दमन किया था और आप ही भक्तजनों की मनोकामना को परिपूर्ण करने वाले हैं । यदुवंशरूप कमल के प्रकाशक सूर्य स्वरूप आपही हैं । हे यदुकुल प्रकाशक ! आपकी जय हो ३ ॥ ३ ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः ।

११

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ।

सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! आपने मधु दैत्य और मुर नामक असुर का विनाश किया था, नरकस्थित पापियों को आप मुक्ति पद देते हैं । गरुड़ जिनके वाहन हैं ऐसे हे गरुडासन भगवान् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।

त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! आपके नेत्र, कमल के समान हैं, भवपाश से छुड़ाने वाले आप ही हैं, हे नारायण ! आपके असंख्य नाम हैं जिन नामों के उच्चारण मात्र से भक्ति प्रधान जीवों का हृदय शुद्ध होता है । हे भक्तिप्रद ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ।

समरशमितदशकंठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! आपने ही मिथिलेश नन्दिनी सीता का अङ्ग विभूषित किया था और आप ही ने निर्दय पापी दूषण और राक्षस रूप लंकापति रावण का विध्वंस किया, हे परमपुरुष ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दरधृतमन्दर ए ।

श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन् । आपका स्वरूप नूतन मेघ के तुल्य है ।
गोवर्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण करके व्रज पुगे को
रक्षा आपने की । हे लक्ष्मी के मुख रूप चन्द्रमा के चकोर आपका
नाम धन्य है, हे परमेश ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥७॥
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।

कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! हमलोग आपके चरणकमल में साष्टाङ्ग
प्रणाम करते हैं । आप ही हम लोगों का मंगल करें,
हे दीनदयाल ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ॥

मंगलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

श्री कविजयदेव का यह उज्ज्वल गीत समस्त संसारो
लोगों को मंगलप्रद है । अतः हे पावन ! आपकी जय हो
जय हो जय हो ॥ ९ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वितीयः प्रबन्धः ॥ २ ॥



पद्मनाभयोधरतटोपरि रम्भलान्-

काश्मोरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ॥

व्यक्तानुरागमिव खेलदनंगखेद-

स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

१३

शृङ्गार रस में लग्न राधाजी के स्तनद्वय में लगे हुए
केशर की शोभा से युक्त वृन्दावन विहारी का हृदय आप लोगों
का मंगल करे ॥ १ ॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै—

भ्रमन्तीं कांतारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ॥

अमन्दं कंदर्पज्वरजनितचिंताकुलतया

चलद्वाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्त ऋतुमें कामदेव के उग्र बाणसे पीड़ित राधा श्रीकृष्ण-
चन्द्र जी से मिलने के हेतु वासन्तीपुष्पों से परिपूर्ण
वन के मध्य में भ्रमण करने लगीं । उस समय श्रीवृषभानु-
नन्दिनी राधिका की कोई प्रिय सहेली उदासीन राधा को देख
कर कहने लगी ॥ २ ॥

वसन्त रागे रूपकताले अष्टपदी ।

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।

मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे ॥

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते । नृत्यति युवतिजनेन

समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥ ध्रुव०

हे सखी ! यह मलयवत लवंगलता के निवृज्जवन को
आलिंगित कर रहा है, अमर और कोकिलदिक पक्षीगण

अपनी अपनी मधुर ध्वनि से क्या ही मन को आनन्द दे रहे हैं और स्वयं नारायण वसन्त ऋतु में नारियों के समूह युक्त निकुञ्ज वन में अति सुन्दर नृत्य कर रहे हैं । हे सखी ! वसन्त ऋतु विरहिजनों को अत्यन्त दुःखदायी होती है ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।

अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥२॥

यह वही वसन्त है जिसमें काम की तीव्र अभिलाषाओं से पथिक-वधू उन्मत्त होकर विलाप किया करती हैं और वकुल के फूलों पर भ्रमर बैठते हैं जिससे वकुल वृक्ष ही रुक जाते हैं ॥२॥

सृगमदसौरभरभसवरावदनवदलमालतमाले । युवजन-
हृदयविदारणमनसिजनखरुचिर्किंशुकजाले ॥३॥

तमाल वृक्षों के नवीन पत्तलों की कस्तूरी तुल्य सुगन्धि से निकुञ्ज वन व्याप्त है । यह निकुञ्ज पलाश के पुष्पों से चारों ओर सुवर्ण सदृश हो रहा है । इसे देखने से यही प्रतीत होता है कि कामदेव विरहिजनों के हृदय विदीर्ण करने के लिये अपने नखों को विस्तृत कर रहा है ॥ ३ ॥

समेतम्]

तृतीयसर्गः ।

१५

मदनमहीपतिकनकदंडरुचिकेसरकुसुमविकाशे ।

मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥

कहीं कहीं नागकेसरलता फूट रही है उससे यह ज्ञात होता है कि कामदेव ने सिर पर सुवर्ण छत्र धारण किया है । किसी र स्थान में पाटली के फूल फूल रहे हैं और उनपर मत्त भ्रमरगण गुंजार करते हैं इससे यह प्रतीत होता है कि मदन का तूण बाणों से भरा है ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुण-

कृतहासे ॥ विरहिनिऋन्तनकुन्तमुखाकृति

केतकिदन्तुरिताशे ॥ ५ ॥

हे सखी ! वसन्त ऋतु को देखकर समस्त संसार निर्लज्ज हो गया है इसी कारण ये नवीन वरुण के वृक्ष फूलने के व्याज से उसकी हँसी कर रहे हैं देखिये तो सही यह केतकी के पुष्प भलाकार मुख धारण किये विरहिजनों के हृदय को भली भाँति वेधित करते हैं ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते वनमालिकयातिसुगन्धौ ।

मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणवन्धौ ।६।

यह वसन्त समय माधवी (चमेली) और नवमल्लिका के पुष्पों की सुगन्धि से अत्यन्त ललित है इससे जितेन्द्रिय सत्यवादी सन्त जन भी मोहित हो जाते हैं । यह वसन्त इस समय युवक युवतियों का अकारण बन्धु है ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
 वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥

आम्रवृक्ष चमेलीलता से ओलिंगित होकर मुकुलित और
 आनन्द से पुलकित है । पास में बहनेवाली यमुना के जल से
 वृन्दावन पवित्र हो रहा है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
 सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥८॥

कविवर श्रीजयदेव स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमल का
 अवलम्बन करके वृन्दावन के निकुंज का वर्णन करते हैं और
 उसीके साथ वसन्त समय में गोपीगणों के हृदय में जो विरह
 पीड़ा हुई थी उसका भी वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे तृतीयः प्रबन्धः ॥ ३ ॥

दरविदलितमल्लोवल्लिचञ्चत्परागप्रकटितमदवा-
 सैर्वासयन्काननानि ॥ इह हि दहति चेतः केतकीगन्ध-
 बन्धुः प्रसरदसमन्वाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥९॥

हे राधे ! इस वसन्त के समय में कुछ खिली हुई चमेली
 को लताओंसे उड़ती हुई पुष्पों की रजों से वन को सुगन्धित
 करता हुआ केतकी के गन्ध से सुगन्धित पवन कामदेव के
 प्राण के समान वियोगियों के चित्तको दग्ध करता है अर्थात्
 इस वसन्त समय में सुगन्धित वायु से विरहिजनों का चित्त

समेतम्]

प्रथम सर्गः ।

१७

उन्मत्त हो रहा है, इस कारण हे धृपमानु नन्दिनि ! ऐसे समय
आपका गमन उचित है ॥ १ ॥

उन्मोलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूतांकुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षणा-
प्राप्तप्राणासमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥२॥

हे सखि ! जितनाही आम्रमुकुल का गन्ध विस्तारित होता
है उतनाही मधुगन्ध लुब्ध भ्रमर उनको कम्पायमान करते हैं
जैसेही पवनसे झकोरको प्राप्त आम्रवृक्षों के सिरपर बैठकर
कोकिलाएँ कूह २ शब्दसे बिरही पथिकों के कानों में विशेष
सीढा देती हैं । हाय ? ऐसे पथिक (मार्ग चलनेवाले) आज
अपनी प्राण-प्रिया का चिंतन करते समय बिताते हैं, और चिंता के
कारण काल्पिक क्षणिक सुख को प्राप्त होकर पश्चात् अत्यन्त क्लेश
से दिन व्यतीत करते हैं ॥२॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रमस्फुरन्मनोहारिविलासला-
लसम् ॥ मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं
पुनराह राधिकाम् ॥ ३ ॥

अनेक स्त्रियोंके आलिंगनके आदरसे मनोहर विलास में प्रगल्भ लालसा वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी को दूर से प्रत्यक्ष दिखाती हुई सखी पुनः राधिकाजी के प्रति बोली ॥३॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली । केलि-
चलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली । हरिरिह
मुग्धवधूनिकरे विलसति विलासिनि केलिपरे ॥ध्रु ०॥

हे कृष्णविलासिनि राधे ! श्रीकृष्णचन्द्रजी ने चन्दन का अपने नील अंगों में लेपन किया है और पीताम्बरसे उन अंगों को सुशोभित किया है, कंठमें सुन्दर वनमाला धारण की है, श्रीकृष्णजी के कपोल, हंसी सहित कामविलास के कारण अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं और उनके कुण्डलों के हिलने से मुखकी शोभा अपूर्व हो रही है। इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्रजी का आनन्दकन्द इसी वन में ब्रजवालाओं के साथ झोड़ा में लुप्तपर हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् ॥गोप-
वधूरनुगायति काचिदुदंचितपंचमरागम् ॥ हरिरिहार

हे राधे ! कोई २ उन्नतस्तनी गोपवधू प्रेम से उन्मत्त होकर कृष्णजी को आलिंगन करके पंचम राग में गीत गाती है।

समेतम्]

प्रथमः सर्गः ।

१६

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ॥
 ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम्
 ॥ हरि० ॥ ३ ॥

श्री कृष्णजी के भ्रूभंग से मोहित होकर कोई २ गोपका-
 मिनी उनके मदनविकासित मुखकमल का ध्यान करके बहुतही
 आनन्द का प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ॥
 चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले
 ॥ हरिरिह० ॥ ४ ॥

किसी २ गोपांगनाने गुप्तवार्ताके कहने के बहाने श्री कृष्ण-
 जीके कर्ण समीप अपने मुखको ले जाकर चातुरी पूर्ण रंग से
 कृष्ण के मुखकमल का आनन्द पूर्वक चुम्बन कर लिया ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ॥
 मञ्जुलवंजुलकुञ्जगतं विचर्ष करेण दुकूले
 ॥ हरिरिह० ॥ ५ ॥

कोई गोपी क्रीडा की इच्छासे यमुनाजल के तटपर
 चैतों के कुञ्जमें विहार करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी का दुपट्टा
 हाथ से पकड़ कर खींचने लगी अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रजी के संग
 काम केलि के आनन्द को भोगनेकी उसने इच्छा प्रगट की ॥ ५ ॥

करतलतालतरलवल्यावलिकलितकलस्वनवंशे ।

रासरसे सह नृत्यपरा हरिणा युवति प्रशशंसे ॥

हरिरिह ॥ ६ ॥

किसी रमणी ने श्रीकृष्ण के साथ नाचते हुए करतल के साथ कंगन की ध्वनि भी उनकी वंशीके ध्वनिके साथ मिला दी । इस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उस रमणी की अत्यन्त ही प्रशंसा की ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि

रमयति रामास् ॥ पश्यति सस्मितचारु परामपरा-

मनुगच्छति धामास् ॥ हरिरिह ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज किसी गोपीका आलिंगन करते हैं, किसीके मुख का चुम्बन करते हैं, किसी गोपी के संग काम क्रीड़ा करते हैं और किसी को हंसकर मनोहर दृष्टि से देखते हैं और किसी २ गोपी के संग पीछे पीछे भी चलते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ॥

चृन्दावनविपिनं ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥

हरिरिह ॥ ८ ॥

समेतम्]

प्रथमः सर्गः ।

२१

अनेक रसों से परिपूर्ण, केशव क्रीड़ा का रहस्य, गोपियों को आनन्द प्रद, जयदेव कविकृत यह गीत भक्तों को मंगल दे ।

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्थः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

विश्वेषामनुरंजनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवरश्रेणीश्यामल-
कोमलैरुपनयन्नंगैरनंगोत्सवम् । स्वच्छन्दं ब्रजसुन्दरी-
भिरभितः प्रत्यंगमालिङ्गितः शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव
मधो मुग्धो हरिः क्रोडति ॥ १ ।

हे राधे ! ब्रजकामिनियों के स्वच्छन्द आलिङ्गन से संसार को आनन्दित करते हुए श्रीकृष्ण चन्द्रजी आपही शृङ्गाररस स्वरूप होजाते हैं और बसंत ऋतु में सर्वत्र ब्रज नारियों की इच्छा पूर्ण करते हैं । भगवान् के नील कमल के समान कोमल अंगों के भोगका अनुभव करके समस्त ब्रज नारियाँ क्रीड़ा कौतुक में मग्न हो जाती हैं ॥ १ ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलत्प्रालेयप्लव-
नेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ॥ किञ्चित्स्निग्ध-
रसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदयादुन्मीलन्ति कुहूः
कुहूरिति मुहुस्ताराः पिकानांगिरः ॥ २ ॥

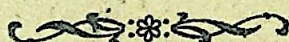
हे राधे ! आज बसन्त के समय निज स्थानस्थित सर्पों के
 आस भयसे यह मलयाचल का पर्वत हिम में डूबने की इच्छा
 से हिमालय की ओर गमन करता है और आम्र के कोमल पत्तों
 को देखकर कोयलों का कुहू कुहू शब्द आनन्द पूर्वक उच्चैः
 स्वर से निकल रहा है ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवामभ्य
 परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया ॥ साधु त्वद्वदन
 सुधामयमिति व्यादृत्य गीतस्तुतिर्व्याजादुद्भूत
 चुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

रासक्रीड़ा से प्रसन्न गोपियों के सामने श्री राधा ने श्री
 कृष्णजी से कहा कि हे भगवन् ! आपका मुखकमल अमृत पद
 है यह कह कर राधाजी ने उनके वदन का चुम्बन कर लिया
 चुम्बन जनित हास्य रेखा से अलंकृत श्रीकृष्णचन्द्र
 का वह मुख कमल सर्व जीवों का मङ्गल करे ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दटीकायां सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः



अथ द्वितीयः सर्गः ॥



विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ ।
 विगलितनिजोत्कर्षादीर्घ्यावशेन गतान्यतः ॥
 क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली
 मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम् १

श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रेम में उन्मत्त राधाने और स्त्रियोंके साथ
 क्रीडाकौतुक में लगे हुए उन्हें देख अपने हृदयमें ईर्ष्या करके
 मधुपानमत्त अमर गणोंसे सेवित लता कुञ्ज के पीछे छिपकर निज-
 सखी से अत्यन्त खेद युक्त होकर यों कहना आरम्भ किया ।

गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी ॥ ५ ॥

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम् ॥
 चलितदृगंचलचंचलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥
 रासे हरिमिह विहितविलासं स्मरति मनो मम
 कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! श्रीकृष्णचन्द्र की मनो मोहिनी छवि मेरी आंखों में
 तथा हृदय में बसी है । अधरामृत के सञ्चार से मीठी ध्वनि से

अलङ्कृत बंशी को जिस समय वे बजाते हैं और तिरछां
आंखों से देखने वाले चञ्चल मुकुट तथा किरीट को धारण कि-
हुये जिस समय वे मधुर परिहास करने लगते हैं उस समय को
उनकी छटा का मुझे बारंवार स्मरण होता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवल्लयितकेशम् ।
प्रचुरपुरंदर धनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिर सुवेशम् रासे० ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके केश मयूर पुच्छ के सदृश शोभायमान
हो रहे हैं और उनकी कान्ति इन्द्रधनुष के समान शोभित
हो रही है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्बितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् रासे० ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण ने नितम्बवती गोपबालाओं के मुख कमलों
का चुम्बन करने के लिये लोभ किया है और जिन के अधर
पल्लव बन्धुजीव के समान मधुर हैं—हंसीसे जिनकी शोभा
उल्लसित हो रही है ऐसे श्री कृष्णको मेरा मन स्मरण
करता है ॥ ३ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववल्लयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ॥
करचरणोरसिमणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः ।

२५

जिन हरिने नर्बन पल्लव स्वरूप कोमल हाथों से हजारों गोप-
कामिनियों को अलङ्कृत किया है, जिन हरिके हाथों और चरणों
के भूषणों से समस्त अन्धकार नाश होता है ऐसे श्रीकृष्ण चन्द्र-
जीको मेरा मन स्मरण करता है ॥ ४ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचंदनतिलकललाटम् ॥
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ॥

हे सखि ! जिनके ललाटमें लगा चन्दन मेघोंके समूह में
चञ्चल चन्द्रमा की निन्दा करता है और गोपियों के पुष्ट स्तनों
के प्रान्त भाग के मर्दनकरने में जिनका वज्रमथल दबता नहीं है ऐसे
श्री कृष्णचन्द्रजी को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ५ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पोतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् । रासे

हे सखि ! जिन हरिके गण्डदेश में अत्यन्त सुन्दर मणियोंके
कुण्डलाभूषण शोभायमान हो रहे हैं और जिनके चरण कमल की
सेवा ऋषि, मनुष्य, देवता असुरादि सभी करते हैं, जिन हरिने
अपने सुन्दर पीताम्बर से अङ्कृत कोमल अङ्गों को शोभित
किया है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ६ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयंतम् ।
 मामपि किमपि तरंगदनंगदृशा मनसा रमयंतम् ॥
 रासे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! अत्यन्त सुन्दर कदम्ब के नीचे मिलनेवाले
 कलिकाल में उत्पन्न हुए पाप भय के नाशक तथा कामक्रीडा को
 बढ़ानेवाली दृष्टि से देखने वाले और हृदय से मेरे साथ रमण
 करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरुषम् ।
 हरिचरणस्मरणं प्रति संप्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥
 रासे० ॥ ८ ॥

श्री जयदेव कवि रचित अतिसुन्दर श्री कृष्णचन्द्र के रूपका
 वर्णन इस कलिकाल में भक्तों को हरिचरणों के स्मरण के लिये
 उपयुक्त होवे ॥ ८ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे पंचमः प्रबन्धः ॥ ५ ॥

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते । वहति च
 परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ॥ युवतिषु चलत्तृष्णे
 कृष्णे विहारिणि मां विना ! पुनरपि मनो वामं कामं
 करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः ।

२७

श्रीवृषभानु नन्दिनी राधाके यह वचन सुनकर सखियाँ राधाजी से कहने लगीं-हे राधे ! श्रीकृष्णजी जब तुम्हें छोड़ अन्य ब्रजनारियों के साथ क्रीड़ा व्यवहार करते हैं तो तुम क्यों चिढ़ती हो ? यह सुन राधा ने कहा कि हे सखि ! चाहे कृष्णजी मुझे छोड़ अन्य गोपियों के साथ क्रीड़ा में भलेही आसक्त हों परन्तु मेरा मन तो उनपर लग गया है । उनके दोषकरने पर भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहता और उनके ध्यान से मेरा मन प्रसन्न होता है, कहो मैं इस विषय में क्या करूँ ॥ १ ॥

मालव रागे एकताली ताले अष्टपदी ॥ ६ ॥

निभृतनिकुंजगृहं गतया निशि रहसि निलीय
वसन्तम् ॥ चकितविलोकितसकलदिशारतिरभसभ-
रेण हसन्तम् ॥ सखि हे केशिमथनमुदारम् ॥ रमय
मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारं ॥ ध्रु० ॥ १
प्रथमसमागमलजितया पटु चाटुशतैरनुकूलम् ॥
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥
सखि हे० ॥ २ ॥

हे सखि ! शान्त लतागृह में आई हुई मेरे साथ रात को एकान्त में क्रीड़ा करने वाले, चकित होकर इधर उधर देखने पर कौतुक

से भरी हंसी हंसने वाले, केशि दैत्य के मारने वाले कृष्ण
साथ कामभावसक्त मुझे तुम मिला दो ॥ २ ॥

हे सखि ! प्रथम समागम की लज्जा से युक्त मेरे साथ
कोमल मधुर हँसी सहित भाषण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र अनेक
भाँति मेरी विनती करेंगे । उस समय मेरी लज्जा दूर हो जावेगी
तब श्रीकृष्ण आपही मेरे जाँघ पर की साड़ी हटावेंगे ।
हे सखि ! ऐसे उन श्रीकृष्णजी से तुम हमें मिला दो ॥ २ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम् ॥
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरम्भ्य कृताधरपानम् ॥
सखि हे० ॥ ३ ॥

हे सखि ! मैं कुञ्जकुटीर के मध्य कोमल कोमल पत्तों की
शय्या बनाकर शयन करूँगी तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे साथ
विराजमान होकर मेरेही वक्षस्थल पर चिरकाल तक शयन करते
हुए आलिङ्गन कर मेरा अधरामृत पान करेंगे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र
जी से तुम हमें मिला दो ॥ ३ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ॥
श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥
सखि हे० ॥ ४ ॥

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

२२

हे सखि ! इस प्रकार कामभोग के समय मदासक्ति से श्रीकृष्ण के दोनों ही नेत्र अधखुले ही रहेंगे और उनके दोनों ही कपोल पुलकित होकर अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण करेंगे ? मेरे बदन पर पसीने की बूंदों को देखकर वह श्रीकृष्ण मुझे ही बार २ चञ्चल नेत्रों से देखेंगे, हे सखि ! ऐसे श्रीकृष्णजी से मुझसे मिला दो ॥ ४ ॥

॥ कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ॥

॥ श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितधनस्तनभारम् ॥

॥ सखि हे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! कोकिल के समान शब्द करने वाली, रति के समय ढीले ढीले फूलों से गुथे हुए अलकों वाली मेरे साथ, कामदेवकी भात करने वाले और स्तनों पर नखक्षत करने वाले श्रीकृष्णचन्द जी को मुझसे मिला दे ॥ ५ ॥

॥ चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।

॥ मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥

॥ सखि हे० ॥ ६ ॥

हे सखि ? मणिजटित नूपुरों के शब्द वाली और ढीली हो गई है मेखला [कमर बन्धन नारा] जिनकी और मेरे संग

परिपूर्ण किया है रति क्रीड़ा का सुख जिन्होंने तथा मेरे केशों को पकड़ कर किया है सुखचुम्बन जिनने ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मुझ से मिला दो ॥ ६ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ॥
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥
सखि हे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! रतिक्रीड़ा में आसक्त होने से मेरे अङ्गों में शिथिलता अवश्य आवेगी और श्रीकृष्णजी के कमल नेत्र में अनंगराग से निश्चय ही मुद्रित होंगे । श्यामसुन्दर मेरी यह दशा देखकर उस समय मुझपर अत्यन्त आसक्त होजाएँगे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मुझसे अवश्य मिलादे ॥ ७ ॥

श्रीजयदेव भणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥
सखि हे० ॥ ८ ॥

जयदेव कविरचित श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्रसे युक्त, प्रीति पूर्वक राधा जी द्वारा कही हुई शृङ्गाररस की यह लीला पढ़ने और सुननेवालों को इस लोक और परलोक में सुखद हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे षष्ठः प्रबन्धः ।

समेतम्]

द्वितीयः सर्गः

३१

हस्तसूतविलासवंशमनूजुभ्रूल्लिमद्वल्लवी-

वृन्दोत्सारिदृगन्तवोक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ॥

मामुद्धीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं कानने ।

गोविन्दं ब्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १ ॥

हे सखि ! जो हरि ब्रजबालाओं से घिरे हुए हैं और समस्त बालार्थे छिपे हुए भाव से जिन हरिकी ओर कटाक्ष युक्त दृष्टिपात करती हैं, मुझे देख कर जिन कृष्णकी वंशो गिर जाती है, कृष्णकी हँसी कंदर्पराग से परिपूर्ण होजाती है, जिनके कपोल पसीनेसे गीले हो रहे हैं इस भाँति बदनमें केलि करते हुए उन कन्हैया को देखकर मेरे मनमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है ॥ १ ॥

दुरालोकस्तोकस्तबकनकाशोकलतिका ।

विकाशः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ॥

अतिभ्राम्यद्भृङ्गी रणितरमणीयानमुकुल-

प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति ॥ २ ॥

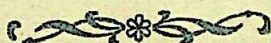
हे सखि ! मैं अपने दुःखकी कहानी क्या कहूँ यह नवीन अशोक की लता का फूलना, यह सरोवर का शीतल वायु, मुझे बड़ाही दुःख देता है मेरी प्यारी ! यह भ्रमर का राग आम्र की सुन्दर कलियाँ भी मुझे सुख नहीं देती हैं ॥ २ ॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
 अवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलाद्धहस्तस्तनम् ।
 गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काश्चिच्चिरं चिन्तय-
 न्तं तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अक्लेशकेशवो नाम
 द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

समस्त गोपियों के हाव भाव कटाक्ष युक्त मुखों को और
 कामवश से छूटी हुई बेणी, आनन्द पूर्वक मृदुलियों को कटाक्ष
 एवं स्तनों को देखकर कन्हैयाजी सब कामिनियों में से राधाजी
 को श्रेष्ठ अनुमान करके बहुत देर तक उनके सौन्दर्य का ध्यान
 करने लगी । ऐसे मधुर तथा चित्त चोर राधाजी के प्रियतम
 आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हें मंगल दें ॥ ३ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे महाकाव्ये भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥



तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

कंसारिरपि संसारवासनावंधशृङ्खलाम् ।

राधामाधाय हृदये तत्याज ब्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सांसारिक वासना को बाँधने की शृङ्खला राधाजी को मनमें स्थिर करके अन्य ब्रज सुन्दरियोंका त्याग कर दिया ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनंगबाणव्रणखिन्नमा-
नसः । कृतानुतापः सकलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे
निषसाद माधवः ॥ २ ॥

कामदेव के बाणों से लग गये हैं घाव जिनको, दीन है मन
जिनका, किया है अनेक भाँति से पश्चात्ताप जिन्होंने ऐसे वह
कृष्ण इधर उधर वृषभानुनन्दिनी राधिका को ढुँढ़कर यमुना
के किनारे समीपस्थ कुञ्ज में बैठ गये ॥ २ ॥

गुर्जररागे प्रतिमंठताले अष्टपदी ॥ ७ ॥

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।

सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ।

हरिहरि हतादरतया गता सा कुपितेव ध्रु० ॥१॥

गोरीशों के घृन्द से घिरा हुआ मुझे देखकर राधाजी यह से चली गई और जाते समय मैंने मना भी नहीं किया जिससे नष्ट हुआ है मान जिसका ऐसी बह राधा कोप करके यहाँ से चली गई है । अहो ? यह मैंने बड़ाही अपराध किया ॥१॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।

किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन गृहेण ॥हरि०॥२॥

और मेरे बहुत काल के विरह से संतप्त वह राधा अपने विना शांतिके लिये क्या उपाय करेगी और क्या कहैगी ?, मुझे अन्य गोपीजनों से क्या प्रयोजन है ? जिसके वियोग में मैंने सब को त्याग दिया है । इस समय धन से, घर से, सुख से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है यह सब निष्फल है ॥ २ ॥

चिंतयामि तदाननं कुटिलभूरोषभरेण ॥

शोणपद्ममिवोपरि भ्रमता कुलं भूमरेण ॥हरि०॥३॥

क्रोध की अधिकता से कुटिल हैं भृकुटियाँ जिसकी भ्रमरों युक्त रक्त कमल के समान मुख है जिस राधा का ऐसे मुख गीतगोविन्द का मैं स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

समेतम्]

तृतीयः सर्गः ।

३५

तामहं हृदि संगतामनिशं भृशं रमयामि ॥
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि । हरि० ॥ ४ ॥

यह विलाप करते हुए हरिने कहा कि हे राधे ! तेरी मनोहर मूर्ति मेरे हृदय कमल में सदैव स्थित रहती है और उसी मूर्ति का मैं निरन्तर पूजन किया करता हूँ । इस अखण्ड वन में तुझे हूँ ढने से मुझे दुःख मिल रहा है । विलापादि करना भी व्यर्थ ही है ॥ ४ ॥

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ॥
तन्न वेधि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥

हरिहरि० ॥ ५ ॥

हे तन्वि ! कोमलाङ्गि राधे ! मैं आपके हृदय को दुःखी जानता हूँ परन्तु यह नहीं जानता कि तू यहाँ से कहां चली गई है इसीसे तुझे प्रसन्न करने में मैं असमर्थ हूँ ॥

इस्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ॥

किं पुरेव ससंभ्रमं परिरंभणं न ददासि ॥ हरि० ॥ ६ ॥

हे वृषभानुनन्दिनि ! यदि तू मुझे दिखाई देती है तो फिर पहिले ही भाँति मेरे पास आकर वेगसे क्यों नहीं आलिङ्गन करती । विरही पुरुष सर्वत्र निज प्रियाही को देखा करते हैं ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ॥

देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि । हरि० ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि ! मेरे किये हुए पिछले अपराधों को क्षमा कर
अब मुझसे आपका कोई अपराध न होगा मुझे दर्शन दो
कामसे पीड़ित हूँ ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन ॥

किन्दुबिल्वसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन ॥ हरि० ॥ ८ ॥

किन्दुबिल्वरुभीसदृश में चन्द्रमा के तुल्य भक्तिप्रधान जय
रवामी रचित श्रीकृष्णजी के परितापका वर्णन सदैव भक्तजनों
लुप्ति करने वाला हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सप्तमः प्रबन्धः ॥ ७ ॥

अपल्लवं घनुरपांगतरंगितानि बाणा गुणाः श्रवण

लिरिति स्मरेण ॥ तस्थामनंगजयजंगमदेवताय

न्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

समस्त संसार को जीतने के बाद अपने विजयी अस्त्र
कामदेव ने अपनी साक्षात् विजय देवता श्री राधा जी से
दिया है । श्री कृष्णचन्द्र कहते हैं कि सचमुच राधा की भी

समेतम्]

तृतीय सर्गः

३७

धनुः, कटाक्ष की परम्परा ही बाण तथा कर्ण देश ही प्रत्यक्षा
हे ॥ १ ॥

हृदि विसलताहारो नायं भुजंगमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कंठे न सा गरलद्युतिः ॥
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हर भ्रांत्यानंग क्रुधा किमु धावसि ॥२॥

इतने पर कृष्णचन्द्र कहते हैं कि ऐ कामदेव तू मुझे शंकर
समझ कर बदला लेने के लिये क्रोध पूर्वक क्यों दौड़ रहा है ।
मेरे हृदय पर शान्ति के लिये रखे हुये मृणाल को सर्प न समझ ।
मेरे गले में ठंढक के लिये पड़ी नील कमल की पंक्ति को
विष का चिह्न मत समझ । मैं इस समय विरही हूँ । विरह संताप
की शान्ति के लिये लगे हुये चंदन को शंकर की विभूति
न जान ॥२॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्वमूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ॥
तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेषत्कटाक्षानिल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि संघुक्षते ॥३॥

हे क्रीडा से ही समस्त संप्रार को जीतने वाले ! इस आश्र

पुष्प रूपी बाणको हाथमें लेकर धनुष पर मत चढ़ाओ क्यों
मूर्छा को प्राप्त हुये मेरे सदृश जनकी पीड़ा से तेरा क्या पुरुष
होगा कुछ भी नहीं। कारण कि उसी मृगनयनी राधाजी के चले
हुए कटाक्ष रूपी बाणों की ज्वाला से टुकड़े २ हुआ मेरा।
अब तक कुछ भी जीवन को नहीं धारण करता इसलिये
असावधान पर प्रहार करना धर्म से विरुद्ध है ॥ ३ ॥

भूचापे निहितः कटाक्षाविशिखो निर्मातु मर्मव्यथ
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्
मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां बिम्बाधरो रागवा
सद्वृत्तस्तनमंडलं तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥४॥

श्रीकृष्णचन्द्र निज मन में स्थित राधा के प्रति अपर
दुःख वर्णन करते हैं। हे राधे मृकुटीरूप धनुष पर चढ़ा हुआ
कटाक्षरूपी बाण मेरे मन को भेदन करे तो अच्छा है। श्यामवर्ण
कुटिल केशों का समूह भी कामदेव को बढ़ावै तो बढ़ावै का
कि जो भीतर से कुटिल हैं वे दूसरे को मारने का अवश्य ही यत्न
करते हैं। यह राग पूर्ण रक्तवर्ण बिम्बाधर अधरोष्ठ मेरे राग
का विस्तार करे तो करे कारण कि रागवाला मोह को उत्पन्न
करता ही है, परन्तु यह गोल तेरे दोनों स्तनों के मंडल
मेरे प्राणोंके साथ क्यों क्रीड़ा करते हैं कारण कि जो साधु भा

समेतम्]

तृतीयः सर्गः

५६

युक्त सदाचारी होते हैं वे दूसरे के प्राणों के घातक कदापि नहीं होते ॥ ४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभूमा-
स्तद्वक्त्रांबुजसौरभं स च सुधास्यंदी गिरां वक्रिमा-
सा विंवाधरमाधुरोति विषयासंगेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हंत विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥ ५ ॥

हे राधे ! मैं तो कभी तुम्हारा स्पर्श करता हूँ व कभी तुम्हारे सुन्दर मुख का और कभी तुम्हारे चंचल नेत्रों का दर्शन करता हूँ व कभी तुम्हारे मुखकमल की सुगंधी को सूँघता हूँ, कभी तुम्हारे मधुर मुसकान युक्त प्रिय वचन को श्रवणकरता हूँ, कभी तुम्हारे विंवाधर अधरोष्ठों की सुन्दरता का दर्शन किया करता हूँ, इतने पर भी हे प्रिये राधे ! मेरी विरहरूपी पीड़ा क्यों शान्त नहीं होती ? यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ध्यान से युक्त योगियों की तो व्याधि का नाश हो जाता है और मेरी व्याधि का नाश नहीं होता ॥ ५ ॥

तिर्यक्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्
गीतस्थानकृतावधानललनालक्ष्मि संलक्षिताः ॥
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु—

स्पन्दं कंदलिताश्रिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥६॥

इति श्रीगीतगोविन्दे मुग्धमधुसूदनो

नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीराधाजी के चन्द्रवत् मुखपर श्रीकृष्ण के कटाक्ष पात हेतु कण्ठदेश टेढ़ा हुआ था। शिरके भूषण भी हिल गये थे। राधाजी की वंशीके गीत को सुनने में एकाग्रचित्त होने कारण गोपीने अनुभव नहीं किया था। श्रीजयदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार धुसुदनके कटाक्ष रूपी तरंग आप भक्तोंको कालतरु कल्याणप्रद होवें ॥६॥

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये तृतीयः सर्गः । ३ ॥



आम्नाय-ग्रन्थालय,

वाराणसी, कसौदी

संस्कृत-विभाग

अथ चतुर्थः सर्गः

यमुनातीरवानीरनिकुंजे मन्दमास्थितम् ।

प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिका सखी ॥ १ ॥

श्रीयमुना नदी के तीर बेंतों के कुंज में राधाजी के प्रेमसे
उन्मत्त चुपचाप बैठे हुए हरिके प्रति राधाजी की कोई प्रिय
सहेली जाकर यह बचन बोली ॥ १ ॥

कर्नाटक रागे एक तालिताले अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चंदनमिंदुकिरणमनुनिंदति खेदमधीरम् ॥

व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलय-

समीरम् ॥ सा विरहे तवदीना ॥ माधव मनसिज-

विशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे नन्दमाधव ! आपके विरह से व्याकुल कामदेव के प्रहार से
आप ही में लीन राधा चन्दन और चन्द्र किरणसे भी हृदय शीतल
न होने के कारण मलयागिरि की वायु को भी विष के समान
मानती है अर्थात् उक्त पदार्थों से राधा के चित्त को शान्ति नहीं

मिलती कारण कि वह राधा आपके विथोग जनित दुःख
दुःखित है ॥ १ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ।
॥ सा विरहे० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! राधिका काम के बाण से अत्यन्त आतुर हो रही
जलते हृदय में स्थित आपकी मोहनी मूर्ति को बचाने के लिये
से भिगोये कमल के पत्तों से राधा जी ने अपने हृदय
ढक रक्खा है ॥ १ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरंभसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ।
॥ सा विरहे० ॥ ३ ॥

हे हरि ? वह राधा आपसे मिलने के हेतु कामदेव के बाणों
प्रहार से शरशय्यापर पड़ी है अर्थात् आप से मिलने के लिये
शरशय्याव्रत कर रही है ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विधुमिव विकट विधुंतुददंतदलनगलिताम् ।
धारम् ॥ सा विरहे० ॥ ४ ॥

समेतम्]

चतुर्थ सर्गः

४३

बहती जलधारावाले लाचनों से अलङ्कृत राधा का सुन्दर मुख,
ऐसा मालुम पड़ता है जैसे राहु के भयंकर दांतों से काट लिये
जाने के कारण बहती अमृत धारा वाले चन्द्रमा का सुन्दर
बिम्ब हो ॥ ५ ॥

विलिखति रहसि कुरंगमदेन भवंतमसमशरभूतम् ॥
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥
सा विरहे ० ॥ ५ ॥

हे हरि ! वह राधा एकान्त में स्थित होकर आपकी मूर्ति
को कामदेव के रूप में चित्रित करती है और आपकी मूर्ति के नीचे
मकर को और आपके हाथ में आम्ररूपी कामदेव के बाण को
लिखकर प्रणाम करती है ॥ ५ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनु-
दाहम् ॥ सा विरहे ० ॥ ६ ॥

और नम्र होकर राधा यह कहती है कि हे माधव ! मैं तुम्हारे
चरण कमल में पतित होकर प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे वियोग
होने पर आज सुधानिधि भी यह चन्द्रमा मेरे शरीर को दग्ध कर
रहा है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवंतमतीवदुरापम् ॥

विलपति हसति विषीदति रोदिति चंचति मुंचति
तापम् ॥ सा विरहे ॥७॥

हे कुञ्जविहारी ! राधाजी किसी २ समय आपके स्वरा
का ध्यान करके और आपकी मनोहर मूर्ति को प्रत्यक्ष क
भाँति देखकर अत्यन्त विलाप करती हैं और कभी आपसे
देखकर हँसा करती हैं किसी समय आपके वियोग जनित दुःख
से अत्यन्त रोदन करती हैं और आपसे मिलने के लिये ह
निकुञ्ज में इधर उधर बावली की भाँति घूमा करती हैं किंतु
समय आपके ध्यान में मग्न होकर आपकी नटवर मूर्ति के साथ
विलाप कर आनन्द को भी प्राप्त होती हैं यानी इसी व्याज
चिन्तारूढ़ी ताप को दूर करती हैं ॥ ७ ॥

श्री जयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ॥
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥
सा विरहे ॥ ८ ॥

हे प्यारेभक्तों ! यदि अपने अन्तःकरण को आनन्द
मग्न किया चाहो तो इस जयदेव रचित राधा वियोग के गीत
का पाठ करो ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालापे
तापोऽपि श्वसितेन दावदहन ज्वालाकलापायते ॥

समेतम्]

चतुर्थ सर्गः

४५

सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथं
कंदर्पोऽपि यमायते विरचयन् शार्दूलविक्रीडितम् ॥

हे माधव ! दुर्भाग्य वश जैसे हरिणी सिंह से डरकर जलते हुए बनमें प्रवेश कर जाल में बँध जाती है उसीभाँति राधाजी इस समय आपके विरह से हरिणी सदृश हो गई हैं। उनका निवास स्थान ज्वलित वन के तुल्य है, सब सखियाँ जाल की भाँति हैं वहाँसही शरीरको जला रहा है और दुष्ट कामदेव हरिणीरूप राधा के पीछे शार्दूल रूपी यमराज होकर आपके वियोग में उसे मारना चाहता है ॥ १ ॥

देशाख्य एकतालीताले अष्टपदी ॥१॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् । सा मनुते कृशतनु-
रतिभारम् ॥ राधिकाविरहे तव केशव माधव वामन
विष्णो ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे केशव ! हे माधव ! हे विष्णो ! आपके विरह से व्याकुल वह राधा कृश (दुर्बल) शरीर के स्तनों पर रक्खे हुए उत्तमोत्तम हार को भार के समान मानती है ॥१॥

सरसमसृणामपि मलयजपंकम् ।

पश्यति विषमिव वपुषि सशंकम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

हे माधव ! आपके विरह से दुःखित वह राधा मरुयागिनि
के ओढ़े (गोले) चन्दन को भी विषवत् मानती है ॥२॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ॥

मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥राधिका० ॥३॥

हे कृष्ण ! वह राधा अत्यन्त लम्बी श्वाँसों को आपके विरह
में कामाग्नि के समान धारण करती है । अभिप्राय यह कि उसे
वह श्वाँस भी जलावे देती है ॥३॥

दिशि दिशि किरति सजलकण्णजालम् ॥

नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥राधिका० ॥४॥

हे माधव ! राधाजी के कमलनयन मृणाल से रहित नी
मरे कमल की भाँति चारों ओर देख देख कर अश्रु पात
करते हैं ॥४॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ॥

कलयति विहितहुताश विकल्पम् ॥राधिका० ॥५॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके वियोग से नेत्रों में देखती हुई
भी पन्लवों से बनी शय्या को सन्देह वश अग्नि के समान
मानती है ॥५॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ॥

समेतम्]

चतुर्थ सर्गः

४७

बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥राधिका०॥६॥

हे कुञ्जविहारी ! वह राधा हथेली पर कपोल को रखकर बैठी है और उसका मुख सायंकाल के बाल चन्द्र की भांति मालूम होता है ॥६॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ॥
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥राधिका०॥७॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! वह राधा आपके वियोग से अपने मरणका निश्चय करके हरि शब्द जपती है । अभिप्राय यह कि अपना अन्त समय जान कर भगवद् भजन करती है ॥७॥

श्रीजयदेवभाणितमिति गीतम् ॥

सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥राधिका०॥८॥

यह राधा के विरह का वर्णन जयदेव कवि रचित भक्तजनों का सुखद हो ॥८॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नवम प्रबन्धः ।

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कंपते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्यातिमूर्च्छत्यपि ॥
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुजीवेन्न किन्ते रसात्
स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोन्यथा हस्तकः ॥१॥

हे हरि ! वह राधा कभी विरह रूप विकार से ज्ञानशून्य हो रही है, कभी शरीर में रोमाञ्च खड़े होने से कांपती है, कभी ग्लानि को प्राप्त होती है, कभी चिन्ता करती है, कभी अत्यन्त अम को प्राप्त होती है, कभी नेत्रों को बंद कर शय्यापर पड़ी रहती है, कभी कभी इधर-उधर भ्रमवश खड़ी होकर देखती है, कभी झूठा को भी प्राप्त होती है, यह सब कामज्वरके चिन्ह राधा को सता रहे हैं । अश्विनीकुमार वैद्य के तुल्य यदि आप प्रसन्न होकर राधा को दर्शन दोगे तो क्या वह शृंगार रसके रसों में जीवित न होगी ? अवश्य ही जीवित होगी । यदि वैद्यराज आप न जाओगे तो छोड़ दिया गया है हाथ जिसका ऐसी राधा अवश्य मृत्युको प्राप्त होगी ॥१॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदंगसंगामृतमात्रसाध्याम्
विमुक्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्रवज्रादपि दारुणोऽसि ।

हे अश्विनीकुमार सदृश वैद्य ! यदि आप अपने शरीर स्पर्शरूपी औषधि से, कामदेव पीड़ित राधा को अच्छा न करोगे तो हम भली भाँति मालूम कर लेंगे कि आपका हस्त इन्द्र के वज्र से भी अधिक कठोर है ॥२॥

कंदर्पज्वरसंज्वराकुलतनोराश्रयमस्याश्विरं

चेतश्चन्दनचन्द्रमाः कमलिनीचिंतासु संताम्यति ॥

समेतम्]

चतुर्थ सर्गः

४९

किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ३

हेकृष्ण ! कामज्वर से व्याकुल तथा कृशशरीरवाली राधाका
चित्त चन्दन, चन्द्र, और कमलिनीका ध्यान करनेपरभी सन्तप्त हो
उठता है, फिरभी शीतल देहवाले एक मात्र आपहीका ध्यान
करती हुई वह एकान्तमें येन-केन प्रकारेण जीवित है ॥३॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।

श्वसिति कथमसौ रसालशाखां

चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥४॥

हे माधव ! भला जिस राधाको पहले, नेत्रोंके पलक गिरने
से भी उत्पन्न आपके दर्शनकी बाधासे खेद होता था वही राधा
खिलीहुई आसकी मंजरी को देखकर कैसे जी सकती है ॥४॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
विभ्रद्वत्त्वसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।

कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो

बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥५॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

वर्षासे व्याकुल गोकुलकी रक्षाके हेतु गोवर्द्धन पर्वतको उतार
 ड़कर अपनी कनिष्ठिका अंगुलीपर धारण करनेवाले, व्रज सुन्दरि
 द्वारा आनन्द पूर्वक दीर्घ कालतक चुम्बित और काम के वशी
 हो गोपियों द्वारा रखे गये अधरोंसे लाल-लाल मुद्रायुक्त भुजाओं
 धारण करनेवाले, गोपवेषधारी कंसके शत्रु आनन्दकन्द भगवान्
 श्रीकृष्णचन्द्र आपका कन्याण करें ॥५॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके स्निग्धमाधव नामक
 चतुर्थ सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

पञ्चमः सर्गः ।



अहमिह निवसामि याहि राधा-

मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।

इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता

स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥१॥

राधाकी भेजीहुई सखी के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर श्रीकृष्णने उससे कहा—“मैं इसी कुञ्जमें बैठा हूं, आप जाइये और मेरी ओरसे राधाको समझा-बुझाकर यहाँपर ले आइये” इस प्रकार श्रीकृष्णसे कही गई सखी राधासे जाकर पुनः बोली ॥१॥

देशवराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १० ॥

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।

स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥

तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥१॥

हे राधे ! कामदेवको सहायक बनाकर मलयाचलकी हवा बहने पर और विरहिजनोंके हृदयोंको विदीर्ण करने के लिये पुष्पोंके कलियोंके खिलनेपर हे सखि ! आपके विरहमें वनमाली पीडित हैं ॥१॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।
 पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति
 तव विर० ॥२॥

हे सखि ! जिससमय चन्द्रमा अपने किरणोंसे श्रीकृष्ण
 जलाता है, उस समय श्रीकृष्ण मरनेके समय की व्यथाके स
 पीडित होते हैं और जब कामदेव उनके ऊपर तीक्ष्ण बाण चर
 है तब वे अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो विलाप करने लगते हैं ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति ।
 मनसि कलितविरहे निशि निशि
 रुजमुपयाति॥ तव० ॥३॥

हे प्रिये ! भ्रमरोंका झङ्कार न सुनाई दे इसलिये वे श्रीकृष्ण
 अपने कानोंको बन्द कर लेते हैं और विरहाक्रान्त हृदयमें आ
 स्मरणसे उनकी व्यथा प्रति रात्रि बढ़ती जा रही है ॥३॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।
 लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम तव० ॥४॥

हे सखि ! आपके विरहमें श्रीकृष्ण अपने सुन्दर राजम
 को छोड़कर घोर जङ्गलमें रह रहे हैं, पृथिवी पर ही सोते
 आपका नाम लेकर बार-बार विलाप करते हैं ॥ ४ ॥

समेतम्]

पंचमः सर्गः

५३

रणाति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।

हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव ॥५॥

हे प्रियतमे ! कोयलोंने “कूहू-कूहू” करने पर श्रीकृष्ण चारों ओर उन्मत्त की भांति दौड़ते हैं, इसपर जब लोग उनपर हंसते हैं, तब श्रीकृष्ण विरहको छिपाते हैं, और कहते हैं कि ‘तुम मत हो’ ॥ ५ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।

तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणमतोव ॥ तव० ॥६॥

हे सखि ! पक्षियों के मनोहर कलरवको सुनकर कृष्णको आपकी मधुर वाणीका स्मरण आ जाता है और आपकी रतिके आनन्दका काल्पनिक अनुभव कर वे रतिसुखको बार-बार बखाना करते हैं ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।

तमपि जपति सरसंपरयुवतिषु न रतिमुपैति । तव० ७

हे प्रिये ! जब कोई प्राणी आपके नाम वाला मंगलमय वैशाख मास का नाम लेता है तब कृष्ण उसे अति प्रेमके साथ सुनते हैं और जपते हैं, अन्य युवतियोंके साथ रति भी नहीं करते ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेवे विरहिविलसितेन ।

मनसि रसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ॥ तव ० ८ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के वियोग रूपी वर्णनसे जयदेव उक्त जयदेवकविके अन्तःकरणमें पुण्यसे श्रीकृष्ण प्रगट हो ।

गुर्जररागेण एकतालीताले अष्टपदी ॥ ११ ॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।

ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलं-
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ १ ॥

हे राधे ! जिस निकुञ्जमें सर्व प्रथम आपके साथ भगवान् श्रीकृष्णने कामदेवकी सिद्धियां प्राप्त की थीं आज उसी कामदेव के महातीर्थ ऐसे कुञ्जमें बैठकर श्रीकृष्ण दिन-रात आपका चिन्तन करते हुए, आपके नामाक्षरों युक्त मन्त्रोंको जपते और आपके कलशतुल्य स्तनोंके दृढालिङ्गनरूपी अमृतकी अभिलाषा करते हैं ॥ १ ॥

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम्
न कुरु नितंबिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्

समेतम्]

पंचम सर्गः

५५

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥
गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! गोपियोंके पुष्टस्तनोंके मलनेमें चञ्चल हाथों वाले वनमाली, जहांपर मन्द-मन्द पवन चल रहा है ऐसे यमुना के तटपर बैठे हैं । इमलिये हे नितम्बिनि ! रतिके सुखका सार ऐसे अभिसारमें (संकेतस्थानमें) बैठे हुए कामदेवके सदृश सुन्दर अपने प्राणेशके समीप चलनेमें विलम्ब न करिये । ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।

बहुमनुते तनुते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥
धीर स० ॥ २ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण मधुर ध्वनिसे आपके नाम संकेत से संयुक्त वंशी बजा रहे हैं और आपके शरीरके स्पर्शको प्राप्त धूलि भी जो पवन द्वारा उड़कर उन तक पहुँच रही है, उसके स्पर्श से अपने को धन्य समझते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलितपत्रे शंकितभवदुपयानम् ।

रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्
धीरसमीरे० ॥ ३ ॥

हे राधे ! पक्षियोंके उड़नेके शब्दको तथा पत्तोंकी खड़-खड़ा-हटको सुनकर श्रीकृष्ण आपके आगमनकी सम्भावना करते हैं

और चकित होकर आपके आगमन मार्ग हो देखने लगते हैं तथा शय्या सजाने लगते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मंजीरं रिपुमिव केलिमुलोलम्
चल सखि कुञ्जं सतिभिरपुंजं शील्य नीलनिचोलम् ॥
धीर समीरे ० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! शब्दायमान और रतिक्रीडाके समय चञ्चल शत्रुकी तरह इस अपने नूपुरको जल्दी से जल्दी निकाल दोजिं और नीले वस्त्रधारण कर घने इस कुञ्जमें चलिये ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे धन इव तरलबलाके ॥
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥
धीर स० ॥ ५ ॥

हे पीतवर्णों राधे ! चञ्चल बकुल पंक्ति से युक्त मेघकी तराहीराके हारसे सुशोभित तथा बड़े पुण्य से उपलब्ध श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर विपरीत रति करके विजली की तरह आचमकिये ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ॥
किसलयशयने पंकजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ॥
धीर स० ॥ ६ ॥

समेतम्]

पंचम सर्गः

५७

हे प्रिये ! कोमल-कोमल पत्तोंके ऊपर सोनेवाले कमल
नयन श्रीकृष्णके ऊपर, वस्त्र और करधनी उतारकर आनन्द का
खजाना अपनी जांघको मिलाइये ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरिदानीं प्रियमपि याति विरामम्
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥
धीर स० ॥ ७ ॥

हे राधे ! हरि अभिमानी हैं और इस समय यह रात भी
व्यतीत हुई जा रही है, इसलिये मेरे कहे हुए वचनोंको शीघ्र
सफल कीजिये तथा श्रीकृष्णकी इच्छा पूरी करिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥
धीरसमीरे० ॥ ८ ॥

हरिकी सेवा करने वाले जयदेव कविके इस गीतके परमर-
मणीय गानेपर अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले, कृष्णको प्रणाम है ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासान्नासाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्वहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनकलान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्त्तते ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामपीड़ित आपके प्रिय बारम्बार सांस लेते हैं, पुनः दिशाओं की ओर देखा करते हैं, बडबडाते हुए बार-बार कुञ्जमें आते-जाते हैं, बारंवार शय्याकी रचना किया करते और अधीरता से इधर उधर देखा करते हैं ॥ १ ॥

त्वद्वाक्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तंगतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सांद्रताम्
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥२॥

हे राधे ! आपके उत्तरकी प्रतीक्षाके साथ साथ देखि सूर्य भी अस्त हो गया, कृष्णके मनोरथके साथ-साथ अन्धेरा भी घना हो गया, चक्रवा-चक्रवीके करुण विलापके समान मेरी लम्बी प्रार्थना भी समाप्त हो गयी इसलिये अब हे सुन्दर चलने में विलम्ब करना व्यर्थ है, क्योंकि छिपकर चलनेका समय है ॥ २ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वांतजा-
त्प्रोद्धोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः ॥
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योर्निशि को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः ॥३॥

समेतम्]

पंचम सर्गः

५९

हे सखि ! अन्धेरे के समय स्त्री तथा पुरुषके सङ्केतस्थानमें मिलने पर और परस्पर परिचय होने पर आलिङ्गन, चुम्बन, कुच-मर्दन, कुचोंपर नखक्षत, कामोदीप्ति उसके पश्चात् रतिका आरम्भ होता है , ऐसे समय लज्जासंयुक्त दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओंको कौन कौन रस प्राप्त नहीं होते ? ॥ ३ ॥

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशं तिमिरे पथि
प्रतितः मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ॥
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनंगतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥ ४ ॥

हे सखि ! अन्धेरी रातमें भयसे चकित चारों ओर देखने-वाली वृक्षोंके नीचे बार-बार ठहर-ठहरकर धीरे-धीरे पैरोंको बढ़ानेवाली, जिसके सारे शरीर में भगवान् कामदेव व्याप्त हो रहे हैं ऐसी आपकी संकेत स्थलमें देखकर सौभाग्यशाली श्रीकृष्ण कृतकृत्य होंगे ॥ ४ ॥

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ॥
स्वच्छन्दं ब्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अभिसारिकावर्णने साकांक्ष-
पुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

राधाके सुन्दर मुखरूपी कमलके भ्रमररूप, तीनों लोकोंके
मुकुटरूप, त्रेवरचनाकेलिये नीलमणिके समान, पृथ्वीका बोझ हलका
करनेमें समर्थ ब्रजकी अङ्गनाओं के चित्तका प्रमुदित करनेके लिए
संध्यारूप, कंसके विनाश करनेमें धूमकेतु (पुच्छलतारा) के समान
देवकीनन्दन आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके साकांक्षपुण्डरीकाक्षनाम
पञ्चम सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥

अथ षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

आर्या

अथ तां गंतुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमंदे सखी प्राह ॥ १ ॥

इसके अनन्तर गमन करनेमें असमर्थ तथा चिरकालसे अनु-
रागिणी राधाको लतागृहमें देखकर कामदेव से पीडित श्रीकृष्णसे
एक सखीने राधाका चरित कहा ॥ १ ॥

पश्यति दिशि २ रहसि भवन्तम् ।

त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् ॥

नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपके अधर-रूपी मधुर मधुको पीती हुई एकान्त
में बैठी हुई राधा प्रति दिशाओंमें आपहीको देखरही है । हे नाथ,
हे हरे ! हे नाथ, हे हरे ! आपकी जय हो । राधा वासगृहमें
आपके लिये दुःखी हो रही है ॥ १ ॥

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ॥

पतति पदानि कियन्ति चन्ती ॥ नाथहरे० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके विरह में इतनी दुर्बल हो गई है कि ज्योंही वेगसे आपके समीप आने लगती है त्योंही दो-चार पैर चलकर गिरने लगती है ॥ २ ॥

विहितविशदविसकिसलयवल्या ॥

जीवति परमिह तव रतिकलया ॥ नाथहरे० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! सफेद कमलनाल तथा नवीन पल्लवके कड़े पहिरनेवाली वह राधा एकमात्र आपके रतिके लोभसे जीवित हैं ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ॥

मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथ दरे० ॥ ४ ॥

हे नाथ ! वह राधा आपके समान अपने वेष की रचनाका अत्यन्त अनुरागसे पुनः पुनः अपने आभूषणोंकी शोभा निहारती हैं तथा 'मैं ही कृष्ण हूँ' इस प्रकारकी भावना करती है ॥ ४ ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ॥

हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथहरे० ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! वह राधा अपनी सखीसे बार-बार यह कहती है कि हरि अभिसार (सङ्केतस्थान) में जल्दी क्यों नहीं आ रहे हैं ? ॥ ५ ॥

समेतम्]

पष्ठः सर्गः

६३

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ॥

हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ नाथहरे० ॥ ६ ॥

हे मधुरिपो ! वह राधा मेघके समान प्रगाढ़ अन्धकारको देखकर आपहीको आयाहुआ समझ आलिङ्गन तथा चुम्बन करती है ॥६॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ॥

विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथहरे० ॥ ७ ॥

हे कंसरिपो ! आपके बिलम्ब करने पर वासकसज्जाकी भांति राधा निर्लज्ज होकर रोती तथा विलाप करती है ॥७॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ॥

रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथहरे० ॥ ८ ॥

जयदेवकविकृत यह गीत रसिकजनोंके आनन्द को बढ़ावे ॥८॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-

र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ॥

तव कितव विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां

रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥१॥

हे धूर्त ! आपका ध्यान करनेवाली और शृङ्गारादि रस रूपी समुद्रमें डुबकी लगानेवाली वह मृगनयनी राधा, कभी (ध्यान

करते समय) अत्यधिक कामकी चिन्तासे आपका शरीर स्पर्श हुआ
ऐसा समझ कर रोमाञ्चिता हो उठती हैं, आपने अधर चुंबनकी
ऐसा समझकर सी-सी करती है, कभी जड़त्वके प्रादुर्भाव होने
वह व्याकुल होने लगती है ॥ १ ॥

अंगेष्वभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि संचारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायती
इत्याकल्पविकल्पतत्परचनासंकल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नेषा निशां नेष्यति ॥२॥

हे कृष्ण ! पत्रों तककी खड़-खड़ाहट सुनकर वह राधा आप
अङ्गोंमें आभूषणोंको धारण करने लगती है, ऐसा समझकर
आप आरहे हैं, शय्याको सजाने लगती है एवं ध्यानमग्न हो
अनेकों विचारोंको करने लगती है, परन्तु विना आपके उस
रात नहीं कटती ॥ २ ॥

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भांडीरभूमीरहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम्
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठघन्य-
वैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

समेतम्]

१४ सर्गः

६५

हे पथिक ! कृष्णसर्पके भवन इस वट वृक्षके नीचे क्यों विश्राम करते हो ? यहाँ तो कृष्ण — सर्पका निवास स्थान है । क्या-भाई ! आपको नन्दबाबाका आनन्द भवन नहीं दिखलाई पड़ता ? इस प्रकार राधा द्वारा कहे हुए वचनोंको पथिक-मुखसे सुनकर, नन्दबाबाके सम्मुख अपनी कलह खुलने के भयसे उन वचनोंको छिपानेवाले श्रीकृष्णने पथिकसे कहा—“आइये आपका स्वागत है” इत्यादि कहकर वह बात उड़ादी । इसतरह श्रीकृष्णसे कथित बाणी जययुक्त हो ॥२॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सोत्कण्ठवैकुण्ठनामक १४ सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।



अथ सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अत्रान्तरे च कुलटा कुलवर्त्मपात-
 सञ्जात पावक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः ॥
 वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालैर्दि-
 वसुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसीसमय व्यभिचारिणी स्त्रियोंके मार्गको रोकनेसे उत्त-
 पापके कारणही मानों स्पष्ट कलङ्कित तथा पूर्वदिशारूपी रा-
 मुखके चन्दन—विन्दुके सदृश चन्द्रमाने अपनी किर-
 वृन्दावनको प्रकाशित कर दिया ॥१॥

आर्या

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा-
 विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः

चन्द्रबिम्बके फैलजानेपर और श्रीकृष्णके देर होनेपर
 विरहिणी राधा, नाना प्रकारसे, जोर-जोरसे विलाप करने लगी।

समेतम्]

सप्तम सर्गः

६७

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।

मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥

यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ ध्रु ॥ १॥

राधाने कहा—रुहे हुये समयपर भी कृष्ण वनमें नहीं आये यह बड़े दुःख की बात है मेरा यह यौवन भी वृथा है, सखियोंसे ठगी गयी मैं अब किसकी शरणमें रहूं अथवा जलाश्रय लेना ही उचित है । (डूब मरना चाहिये) ॥१॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ॥

तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ यामि० ॥२॥

जिन श्रीकृष्णके लिए मैंने रात्रि में इस घोर जंगलमें वास किया, उन्हीं कृष्णने मेरे हृदयमें कामदेवके असह्य बाणोंको गाड़ दिया ॥२॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना ॥

किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥ यामि० ॥३॥

इस जंगलमें अब मैं ज्ञान शून्य होकर विरहकी आग कैसे सह सकती हूं, मेरा यह शरीर भी वृथा है इससे मृत्यु कहीं अच्छी है ॥३॥

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ॥
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनि ॥ यामि ॥४॥

अत्यन्त खेद है कि मनोहर वसन्तकी ये रात्रियां सुझे दे रही हैं और ये ही रात्रियां अन्य गोपाङ्गनाको जिसने पुष्प हैं, श्रीकृष्णके साथ आनन्द का अनुभव करा रही हैं ॥४॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ॥
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ यामि० ॥ ५ ॥

हन्त ! श्रीकृष्णके विरहमें रत्न जड़े कङ्कण आदि आभूषण तुल्य हैं । अर्थात्-बिना पतिके मेरा सारा शृङ्गार व्यर्थ है ॥

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ॥
सूगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया ॥ यामि० ॥६॥

कामदेवके बाणोंकी लीलासे फूलोंके समान कोमल शरीत सुझे, स्वभावसे ही मृदु यह पुष्पमाला असह्य आघात पहुँचाती है ॥

अहमिह निवसामि न गणितवनवेतसा ॥
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥ यामि ॥७॥

मैं तो प्यारे कृष्णके लिए जंगल और बेटोंकी परवाह कर यहाँ रह रही हूँ, किन्तु मधुसूदन सुझे हृदयसे भी स्मरण करते ॥७॥

समेतम्

सप्तम सर्गः

६९

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ॥

वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ॥ यामि० ॥ ८ ॥

कोमल कलासे युक्त, श्रीकृष्णके चरणोंके शरणवाली जयदेव कवि की यह वाणी आपके हृदयमें शृङ्गारकी समस्त कलाओंसे युक्त युवतियों की तरह बसे ॥ ८ ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति ।

कान्तः कलान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतकृतमञ्जुञ्जुललताकुञ्जैऽपि यन्नागतः ॥ १ ॥

सङ्केतस्थानमें कृष्णके न आनेपर राधा सोचने लगी—क्या प्रियतम अन्य कामिनीके पास तो नहीं चले गये ? अथवा मित्रोंके हास क्रीडामें तो नहीं फंसे गये ? अथवा इस अरण्यमें अन्धेरेके कारण इतस्ततः भूलकर कहीं भटकते तो नहीं हैं ? अथवा मेरी भांति वियोगी होकर चलनेमें असमर्थ तो नहीं हो गये ? जैसे कि संकेत होने पर भी उनके वियोगसे एक पग भी मैं नहीं चल सकती वैसे ही वह भी हो गये क्या ? ॥१॥

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वोक्ष्य विषादमूकाम्
विशंकमाना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह । २ ।

इसके बाद कार्यकी सिद्धि न होनेके कारण दुःखी तथा
मौन होकर अकेली आतीहुई सखीको देखकर "क्या, कृष्ण
किसी अन्य गोपाङ्गनाके साथ तो नहीं रमण करते हैं ? ऐसे
प्रत्यक्ष देखे हुए की तरह राधाने कहा ॥२॥

स्मरसमरोचितविरचितवेशा ॥

गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ॥

कापि चपला मधुरिपुणा

विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु० ॥ १॥

हे प्रिये ! कामदेवके साथ युद्ध करनेके अनुरूप रचेहुए के
वाली इधर-उधर गिरे हुए बालों के फूलवाली हंससे अधिक सुन्दर
कोई चपल कामिनी कृष्णके साथ रमण कर रही है क्या ? ॥१॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ॥

कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि च० ॥ २॥

हे सखि ! श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे उत्पन्न अनाद
वाली तथा कलशके समानकुचोंके ऊपर हिलते हुए हारवा
कोई कामिनी कृष्णके साथ विलास कर रही है क्या ? ॥२॥

विचलदलकलिताननचन्द्रा ॥

तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि च० ॥ ३॥

समेतम्]

सप्तम सर्गः

७१

हे प्रिये ! जिसके मुख चन्द्रपर चंचल अलकें शोभित हो रही हैं तथा प्रिय द्वारा अधरपानसे जिम्मे आलस्य आ रहा है, ऐसी किसी रमणीके साथ कृष्णचन्द्र रमण कर रहे हैं ॥३॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ॥

मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ कापि च० ॥ ४ ॥

चञ्चल कुण्डलोंकी रगड़से जिसके कपोल घिस गये हैं, ऐसी और झन-झन शब्द करनेवाली करधनी युक्त कमरकी चञ्चल चालवाली कोई व्रजवनिता कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ॥४॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ॥

बहुविधक्वजितरतिरसरसिता ॥ कापि च० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! रति क्रीडाके समय अनेक प्रकारकी मधुर बातोंको करती हुई श्रीकृष्णके अवलोकनसे लज्जा भावको प्राप्त और मुसकाती हुई कोई गोप-ललना कृष्णके साथ रम रही है ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभंगा ॥

श्वसितनिमीलितविकसदनंगा ॥ कापि च० ॥ ६ ॥

हे सखि ! रतिश्रमसे उत्पन्न श्वास लेनेवाली तथा नेत्रोंको बंद करनेसे जिसके प्रत्यङ्गमें काम-भाव व्याप्त हो गया है, एवं रतिके

आनन्दसे अत्यधिक रोमाञ्चित शरीरवाली कोई व्रजवनिता कृष्णके साथ विहार कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकण्णभरसुभगशरीरा ॥

पतिपतितोरसिरतिरङ्गाधीरा ॥ कापि च ० ॥ ७ ॥

रति-श्रमसे उत्पन्न पसीनेके बिन्दुओंसे सुन्दर शरीरवाली, तथा रतिके समय पतिके वक्षःस्थलपर सोनेवाली, रतिरूप समरमें अति गम्भीर, कोई व्रजांगना कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ॥

कलिकलुषं शमयतु हरिरमितम् ॥ कापि च ० ॥ ८ ॥

अतिसुन्दर जयदेव कविकृत हरिके रमणका वर्णन कलियुगी पापोंको शान्त करे ॥ ८ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुज-

द्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ॥

विधुरतीव तनोति मनोभुवः ॥

सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

हे सुहृदये ! मेरे विरह से पीले रंगवाले श्रीकृष्णके मुखरुमलके सदृश कान्तिवाला कामदेवका मित्र यह चन्द्र आनन्द-प्रद होनेपर भी मेरे चित्तमें काम-व्यथा बढ़ाता है ॥ १ ॥

समेतम्]

सप्तमसर्गः

७३

गुर्जररागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ १५ ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ॥

मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ।

रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना । ध्रु० ॥ १॥

हे प्रिये कामसे देदीप्यमान चुम्बन करनेसे संकुचित और सुन्दर ओठोंवाली गोप वधूके मुखपर श्रीकृष्ण, दर्पसे कस्तूरीका तिलक करते हैं, जैसे चन्द्रमें मृगचिह्न है । ऐसे कामक्रीड़ा विजयी आनन्द कन्द कृष्ण इस समय यमुनाके तीरवाले उपवनमें रमण कर रहे हैं ॥ १॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलित तरुणानने ॥ ॥

कुरवककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ॥

रमते य० ॥ २ ॥

हे सखि ! मेघोंके झुण्डके सदृश सुन्दर, युवतियोंके चित्तको चञ्चल करनेवाले, कामदेवरूपी हरिणके वनरूप गोपवनिता की चांटीमें कृष्ण विजलीके समान शोभित पीले-पीले कुरैयाके पुष्प गूँथ रहे हैं ॥ २॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते ॥

मणिसरममलंतारकपटलंनखपदशशिभूषिते ॥ रमते ३०

हे प्रिये ! कस्तूरी की धूलि से धूसरित उत्तङ्ग कुचोंपर नखरूपी
चन्द्रसे युक्त श्रीकृष्ण निर्मल मणियोंके हाररूपी तारागणोंको
पहिनाते हैं ॥२॥

जितविसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ॥
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥
रमते य० ॥ ४ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण भगवान् कमलदण्ड की कोमलताको जीत-
नेवाले नलिनीदल के समान हथेली वाले, बरफके समान शीतल
ऐसी कोमल भुजाओं में पन्ना रत्न जड़े कंकण पहिनारहे हैं ॥४॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ॥
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥
रमते य० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! श्रीकृष्ण कामदेव के लिये सुवर्णके आसन सदृश,
सुवासित, विस्तृत और मोटे मोटे रतिके निवास स्थानरूपी जघन
स्थलोंपर मणिरचित तोरण के समान करधनी पहिना रहे हैं ॥५॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ॥
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥
रमते य० ॥ ६ ॥

समेतम्]

सप्तमः सर्गः

७५

हे प्रिये ! वह श्रीकृष्णचन्द्रजी, नखरूप मणियों से शुशोभित लक्ष्मीके निवास्थान, कोमल-कोमल पल्लवोंके समान किसी व्रजांगनाके चरणों को अपने वक्षः स्थलपर रखवर उनमें महावर लगा रहे हैं ॥६॥

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खल हलधरसोदरे ॥
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥
रमते य० ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! जब कि वह बलरामका छोटाभाई किसी सुनयनी के साथ विहार करता है, तब हे सखि ! बताओ मैं क्यों इस पेड़के नीचे बिना रसके उसकी प्रतीक्षा करूं ? ॥ ७ ॥

इह रसभणाने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ॥
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥
रमते य० ॥ ८ ॥

शृङ्गार रसका वर्णन करनेवाले, हरि-गुण-गान करनेवाले, श्रीकृष्णके चरण-सेवक, जयदेव कविके अन्तः करणमें कलियुगके पापचरित का वास न हो ॥ ८ ॥

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे,
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ॥

पश्याद्य प्रिसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै—
रुत्कण्ठार्तिभगादिव स्फुटदिदं चेतःस्वयं यास्यति ॥ १ ॥

हे सखि दूति ! यदि वे निर्दयी ठग कृष्णचन्द्र नहीं आये तो इसमें क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो अनेकों-महिलाओं वाले हैं, उनके साथ स्वेच्छासे रमग करते हैं, इसमें तेरा क्या दोष ? देख, आज उस प्रियतम कृष्णके गुणोंके वशीभूत होकर यह चित्त उत्कण्ठासे स्वयंही उनके समीप मिलने जायगा ॥ १ ॥

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ॥

तपति न सा किसलयशयनेन ॥

सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० । १ ।

हे सखि ! पवनसे चलायमान कमलके समान नेत्रवाले वन-मालीके साथ जिस युवतीने विहार किया, वह कोमल-कोमल पल्लवोंकी जगयापर सोने से दुःखी नहीं होती ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ॥

स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि या० ॥ २ ॥

हे आलि ! खिले हुए कमलके समान मुखवाले श्रीकृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली ब्रजवनिता, कामबाणोंसे पीडित नहीं होती ॥ २ ॥

सहितम्]

सप्तमसर्गः

७७

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ॥

ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि या० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! अमृतके समान मधुर और कोमलभाषी कृष्णके साथ विहार करनेवाली व्रजवनिता मलयाचलकी हवा से कभी सताई नहीं जाती ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ॥

लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि या० ॥ ४ ॥

हे सखि ! स्थलकमलके समान सुन्दर हात पैर वाले कृष्णके साथ आनन्दानुभव करने वालीको चन्द्रमाकी शीतल किरणें कभी नहीं सताती ॥ ४ ॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ॥

दलति न सा हृदि विरहभरेण ॥ सखि या० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! जलपूर्ण मेघके सदृश वर्णवाले श्रीकृष्णके साथ जिस रमणीने रमण किया उसे चिरकालके वियोगकी व्यथा नहीं पीड़ा देती । ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ॥

श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि य० ॥ ६ ॥

हे आलि ! सुवर्णके समान पीताम्बरधारी कृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली को सखियोंके ताना मारने से दुःख नहीं होता ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ॥

वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि या० ॥ ७ ॥

हे सखि ! समस्त लोकरूके लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ तरुण और पारम
दयालु कृष्णके साथ जिस गोप-वधूने विहार किया उसे काम पीड़ा
नहीं सताती ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ॥

प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि या० ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकविके इस प्रकारके वचनोंसे श्रीकृष्ण भक्तोंके
हृदयमें प्रवेश करें ॥ ८ ॥

मनोभवानंदन चंदनानिल

प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।

क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं

पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

हे कामदेवको आनन्दित करनेवाले मलयाचल सम्बन्धी दक्षिण
वायु ! कृपया अपनी कुटिलता त्यागिये, हैं जगत्प्राण ! मेरे सामने
माधवको उपस्थित कर तब मेरे प्राण हरिये ॥ १ ॥

रिपुखि सखी संवासोऽयं शिखीव हिमानिलो

विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते ॥

सहितम्]

सप्तमसर्गः

७९

हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरंकुशः ॥ २ ॥

हे प्रिये ! जब उस प्रियतम श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है तब सखियों के साथ उठना बैठना शत्रुवत्, ठंडी हवा अग्निवत्, अमृतकिरणधारी चन्द्र विषवत्, अति क्लेशकारी मालूम पड़ते हैं इतना होनेपर भी, उसी निर्दयी कृष्ण की याद आ जानेपर मेरा चित्त उसकी ओर झुका जाता है । वास्तवमें-मृगनयनियों के लिए कामदेव अत्यन्त दुष्ट तथा निरङ्कुश है ॥ २ ॥

बाधां विधेहि मलयानि नृ पञ्चबाण

प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ॥

किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरंगै-

रंगानि सिंच मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

हे मलयाचलके पवन ! आप मुझे अपनी इच्छानुसार खूब सता लीजिये, हे पञ्चबाण ! (कामदेव) आप भी मेरे प्राणों को हर लीजिये, मैं अब जीतेजी घर वापस नहीं जाऊँगी । हे यम-राजकी बहिन, यमुने ! आपभी मुझपर क्यों क्षमा करती हैं आप अपनी तरङ्गोंसे मेरे अङ्गोंको सींचे, जिससे मेरे शरीरका दाह सदा के लिये दूर हो जाय ॥ ३ ॥

सांद्रानन्दपुरंदरादिदिविषद्वृंदैरमंदादरा-
 दानन्दैर्मुकुटेंद्रनीलमणिभिः संदर्शितेन्दीवरम् ॥
 स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्द गलन्मन्दाकिनीमेदुरं र-
 श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥४॥
 इति श्रीगीतगोविन्दे नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अत्यधिक आनन्दसे युक्त इन्द्रादि देवगण रत्न जड़े मुकुटों से बड़े आदर के साथ जिन भगवान श्रीकृष्णके चरणोंको स्पर्श करते हैं और अपनी इच्छानुसार जिन भगवान श्रीकृष्णके चरण कमलोंके परागसे गङ्गाजल सदा व्याप्त रहता है, अशुभ नाशके लिये उनके पदारविन्दको प्रणाम है ।

इस प्रकार गीतगोविन्द काव्यके नागर नारायण नामक सप्तमसर्गकी टीका समाप्त हुई ।

अष्टमः सर्गः ।



अथ कथमपि यामिनीं निनीय

स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते ।

अनुनयवचनं वदन्तमग्रे

प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥१॥

इसके बाद किसी तरह रात बिताकर कामबाणोंसे पीड़ित होने पर भी वह राधा, प्रातः काल आकर विनयपूर्वक सान्त्वना वचन से बोलने वाले और पैरों पड़नेवाले अपने प्रिय श्री कृष्णसे ईर्ष्या-युक्त होकर बोली ॥ १ ॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम्

वहतिनयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥

हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।

तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ।

॥ ध्रु० ॥

रात्रिके जागरणसे उत्पन्न थकावटके कारण आपके नेत्र लाल-लाल हो रहे हैं और पलक आलस्य से भरे दिखाई देते हैं ।

जिससे स्पष्ट प्रगट है कि किसी नायिका के शृङ्गाररसका अनुराग इननेत्रों में भरा हुआ है। अतः हे माधव ! आप उसी नायिका के पास जाइये जो आप पर अनुरक्त है। हे कमलनयन ! आप उसी को अपनाइये जो आपके दुःखको दूर करती है, धूर्तताभरे वाक्यों को मेरे सामने न कहिये ॥ १ ॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्णं तनोति तनोरनुरूपम् । हरि०

हे कृष्ण ! काजलसे काले काले नेत्रों के चुम्बनसे आपके लाल-ओठ नीले पड़ गये हैं और आपकी देहके रङ्ग में मिल गये हैं ॥२॥

वपुर्नुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ।
हरि० ॥३॥

हे कृष्ण ! कामयुद्ध में तीखे-तीखे नाखूनों के क्षतसे रेखायुक्त आपका शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे—पन्ने के टुकड़ों पर सुवर्ण-क्षरों से रतिजय लेख लिखा गया हो, अर्थात् उस नायिका ने प्रसन्न हो आपको खूब नोचा है जिससे आपके शरीर में विजय पाने के प्रमाण की भांति ये नख क्षत दिखाई दे रहे हैं, इसलिये हे नाथ ! आप उसी के पास जाइये ॥३॥

सहितम्]

अष्टमसर्गः

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् । हरि० ४

हे कृष्ण ! उस नायिकाके चरणकमलों से निकले महावरसे
सींचाहुआ यह आपका उदार हृदय ऐसा दिखाई देता है मानो,
मदनरूपी वृक्ष के पत्तोंका समूह बाहर आ गया हो । इस लिये
आप उसीके पास जाइये ॥४॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम्
॥ हरि० ॥५॥

हे कृष्ण ! आपके ओठों पर परकीया अंगना से किये हुए
दन्तक्षतको जब मैं देखती हूँ तब मेरे चित्तमें अत्यन्त खेद होता
है, इतना होनेपर भी क्या आप हममें तथा तुममें अभेद है ?
ऐसा कह सकते हैं ॥५॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्णमनोऽपि भविष्यति नूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् हरि० ॥६॥

हे कृष्ण ! मुझे ऐसा मालुम होता है कि जैसे आपका शरीर
काला है वैसे ही आपका अन्तःकरण भी काला है । नहींतो
आपकाही अनुगमन करनेवाले काम पीडित मुझ सरीखे जनको
क्यों छलते हो ? ॥६॥

अमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् हरि०॥७॥

हे कृष्ण! आप इस जङ्गलमें अबलाओंको सतानेके लिये
अमण करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं, क्योंकि निर्दयता
पूर्वक स्त्रियोंको मारनेवाला आपका बालचरित पूतनानेही प्रकट
करदिया है ॥७॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम्
॥हरि०॥८॥

हे पण्डित जनों! जयदेवकवि विरचित सम्भोग शृंगासे
वञ्चित खण्डिता नायिकाका विरह-विलाप सुनिये, अमृतके
समान मधुर यह कृष्ण-चरित स्वर्गमें भी दुर्लभ है ॥८॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव

प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम्
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव !

त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥१॥

हे धूर्त अन्य गोपवधूके पैरोंमें लगे हुए महावरसे आपका
अन्तःकरण बाहरी अनुरागसे ही रञ्जित ज्ञात होता है। और

समेतम्]

अष्टम सर्गः

८५

आपके इस कृत्रिम प्रेमको जानकर जगत्प्रसिद्ध आपके विपुल
अनुरागके नाशके भयसे आपका दर्शन, शोकसे मुझे लज्जित
करता है । ॥१॥

प्रातर्नीलनिचोलमच्युत उरः सङ्गीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः॥२

इति श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने विलक्षणलक्ष्मीपति—

नामाष्टमः सर्गः ॥८॥

प्रातःकाल नीले रङ्गके वस्त्रोंको धारणकिये कृष्णको और
पीताम्बर से आच्छादित राधाके वक्षःस्थलको देखकर सखियोंमें
आश्चर्यकी सीमा न रही, तत्काल, लज्जायुक्त मन्द हास्यसे पूर्ण
चञ्चल अपाङ्गों द्वारा राधाके मुखकमलकी ओर निहारने वाले नन्द
के पुत्र संसार के आनन्दके लिये हों ॥ २ ॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यकी भावपूर्ण

अष्टम सर्गकी टीका समाप्त हुई ।

—

नवमसर्गः

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विवादसम्पन्नाम् ।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहः सखी ॥

इसके बाद कामज्वरसे पीड़ित, रतिसुखरहित, अत्यन्त दुःखित
श्री कृष्णके चरितको निरन्तर स्मरणकरनेवाली, कलहान्तरिता
(पतिका तिरस्कार कर पश्चात्ताप करनेवाली) राधाले
एकान्तमें एक सखी कहने लगी ॥ १ ॥

गुर्जररामे रूपकताले अष्टपदी ॥ १८ ॥

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।

किमपरमधिकसुखं सखि भवने ॥

माधवे मा कुरु मानिनि मानमये । ध्रु० ॥१॥

हे मानकरनेवाली राधिके ! अब आप कृष्णके विषयमें मान
मत करिये, हे प्रिये ! यह वसन्तकी हवा बहने पर प्रिय कृष्ण
स्वयं संकेतस्थलमें आ गये हैं, हे सखि ! क्या घरपर इससे भी
अधिक आनन्द मिलेगा ? ॥ १ ॥

समेतम्]

नवम सर्गः

८७

तालफलादपि गुरुमतिभरसम् ।

किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ माध० ॥२॥

हे प्रिये ! ताल फलसे भी अधिक बड़े और अति सरस तथा कलशके समान इन स्तनोंको क्यों विफल कर रही हो ? ॥ २ ॥

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।

मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् । माध० ॥३॥

अधि मानिनि ! मैंने कई बार नहीं कहा था क्या ? कि "परम सुन्दर कृष्णका परित्याग न करिये" ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।

विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माध० ॥४॥

हे प्रिये ! अब आप क्यों पश्चात्ताप करती हो ! और क्यों व्याकुल होकर रोती हो देखो यह सारी युवतियां आपका मजाक उड़ाती हैं ॥ ४ ॥

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।

हरिमवलोकय सफल्य नयने ॥ माध० ॥५॥

हे मानिनि ! कोमल नलिनी के पत्तों से बनी शीतल शय्यापर कृष्णको देखकर अपनी आंखोंको कृतार्थ किये ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।

शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माध० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! आप अपने मनमें क्यों इस तरह अधिक खेद करती हैं, मेरी बातोंको मानिये, मैं तुम्हारे हितकीही बात कहूंगी ॥ ६ ॥

हरिरुपयातु वदतु बहु मधुरम् ।

किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् माध० ॥ ७ ॥

हे मानिनि ! ऐसा उपाय करिये कि भगवान् श्रीकृष्ण आपके समीप आवें और आप इस तरहसे मीठी मीठी उनसे बातें करें, अपने मनको क्यों क्लेशित कर रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।

सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् । माध० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत अति सुन्दर श्रीकृष्ण चरित रसिकजनोंको सुखकारी हो ॥ ८ ॥

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्वागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपतरीकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ १ ॥

समेतम्]

नवम सर्गः

८९

हे राधे ! आप श्रीकृष्ण के प्रेम करने पर उनसे रूखा व्यवहार करती हो, उसके नम्रहोनेपर कठोर हो जाती हो उसके अनुरक्त होनेपर विरक्त होती हो, उसके सामने आनेपर मुँहफेर खड़ी होती हो, इसी लिये आपको श्रीखण्ड चन्दन की चर्चा विष की तरह, चन्द्र सूर्य की तरह, हिम अग्नि की तरह, क्रीड़ा पीड़ा की तरह विपरीत लग रहा है ॥ १ ॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविसृंसनः
स्तब्धाकर्षणादृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृष्यद्दानवदूयमानदिविषदुर्वासदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ॥२॥
इति श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने मुग्धमुकुन्दो

नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

तरुणगोपियों को मोहित करने में जिनके मुकुट में लगे हुये पारिजात के फूल ढीले पड़ गये हैं, तथा जो अचेतन पदार्थोंतकको आकर्षित करते हैं, देखनेवालों को हर्षान्वित करते हैं, जो महामन्त्र स्वरूप हैं, उदण्ड दैत्योंसे पीड़ित देवताओंके दुःसह दुःखों का जो शमन करते हैं, उन भगवान् कृष्णके वंशीकी ध्वनि आप लोगों का कल्याण करे ।

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके मुग्धमुकुन्द नामक नवम सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

दशमसर्गः



अत्रान्तरे मसृणारोषवशमसोम-

निःश्वासनिःसहमुखीं समुपेत्य राधाम् ।

सत्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते

सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ॥१॥

इसी समय सायङ्काल के समय अत्यन्त कुपित, श्वासोच्छ्वास से म्लान- मुखवाली, लज्जापूर्वक सखी के मुखको देखनेवाली सुन्दरमुखी राधाकं समीप आकर कृष्णने आनन्द से गद्गद होकर कहा ॥ १ ॥

देशवशाद्विरागे अडवताले अष्टपदी ॥ १९ ॥

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी

हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।

स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा

रोचयति लोचनचकोरम् ॥

समेतम्]

दशमसर्गः

९१

प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले

मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।

सपदि मदनानलो दहति मम मानसं

देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥१॥

हे प्रिये ! आप यदि कुछ भी कहती हो तो आपकी दन्त-
कान्ति मेरे भयरूपी घने अन्धकारको शमन कर देती है, और
आपका मुखरूपी चन्द्रमा आपके फड़कते हुए अधरोंकी सुधा
पीनेके लिये मेरे नयनरूपी चकोरोंको ललचाता है । हे प्रिये
चारुशीले ! मेरे ऊपर कृपा करके अकारणमानका परित्याग
कीजिये और अपने मुखरूपी कमलका मधुपान कराइये क्योंकि
कामाग्नि मेरे चित्तको जला रहा है ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी

देहि खरनखरशरघातम् ॥

घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं

येन वा भवति सुखजातम् । प्रिये चारु ॥२॥

हे सुन्दरदांतों वाली ! यदि यथार्थमें आप मेरे ऊपर कुपित
हों तो आप अपने नोकीले नाखूनरूपी बाणोंसे मेरे ऊपर प्रहार
करें, दोनों भुजाओंसे मुझे बांध लें और दांतोंसे काट लें ॥२॥

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं

त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।

भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी

तत्र मम हृदयमतिरत्नम् ॥ प्रिये चारु ॥३॥

हे प्रिये ! आप मेरे लिए अलङ्कार हैं, आप मेरा प्राण हैं, आप मेरे लिए संसारमें रत्नके सदृश हैं, इसलिये सदा मेरे ऊपर आप कृपा करती रहें, आप मेरे ऊपर कृपालु हों इसके लिए मेरा हृदय सदा प्रयत्न करता रहता है ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं

धारयति कोकनदरूपम् ।

कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि

कृष्णमिदमेतदनुरूपम् । प्रिये चारु . ॥५॥

हे तन्वि ! आपके नेत्र नील कमलके सदृश होनेपर भी आपके कारण लाल कमलके सदृश हो रहे हैं, यदि अपने नेत्रको काम-देवके बाण समझकर कुछ कृष्णको रङ्ग रही हो तो यह तुम्हारा रंगना ठीक ही है ॥ ४॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरिमणि मञ्जरी

रञ्जयतु तव हृदयेशम् ।

समेतम्]

दशमसर्गः

९३

रसतु रसनापि तव घनजघनमण्डले

घोषयतु मन्मथनिदेशम् । प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! आपके कलशरूपी स्तनोंपर रत्नोंका हार शोभायमान हो, और वह हार आपके वक्षःस्थलको अनुरक्त करे । हे प्रिये ! आपके सघन जघनमण्डलके ऊपर करधनीकी ध्वनि गूँजे, और वह करधनीकी ध्वनि कामदेवके आज्ञाकी घोषणा करे ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं

जनितरतिरङ्गपरभागम् ।

भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं

सरसलसदलक्तकरागम ॥ प्रिये चारु० ॥ ६ ॥

हे मधुरभाषिणि ! यदि आप कहें तो, स्थल कमलकीभी शोभा को भात करनेवाले, मेरे चित्तको आनन्दित करनेवाले, रतिरागमें असीम आनन्द देनेवाले, आपके इन दोनों पैरोंको, सरस और शोभमान सहावर से लाल करदूँ ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं

देहि पदपल्लवमुदारम् ।

ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो

हरतु तदुपाहितविकारम् ।

हे प्राणप्रिये ! कामदेवरूपी विषका नाश करनेवाले, अलं-
कार स्वरूप नवीन पत्तोंके समान कोमल अपने चरणोंको मेरे
शिरपर रखें क्योंकि कामाग्निकी भयंकर ज्वाला मेरे हृदय में
धधक रही है, इससे जरा शान्ति मिलेगी ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपटुचारुमुरवैरिणो

राधिकामधिवचनजातम् ।

जयति पद्मावतीरमणजयदेवकवि-

भारतीभणितमिति गीतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चञ्चल चतुरता और प्रेमरस से परिपूर्ण अतएव
सुन्दर पद्माके पति जयदेव कविकी वाणी द्वारा राधाके प्रति
आनन्द कन्द श्रीकृष्णकी उक्तियाँ सबसे बढ़-चढ़कर हैं ॥८॥

परिहर कृतातङ्गे शङ्कां त्वया सततं धन-

स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।

विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं

स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥१॥

हे कामसन्तप्तहृदये ! मैं दूसरी नायिका के पास जाता
हूँ इस तरहकी शंकाओं को छोड़ दें क्योंकि कठोर स्तनों और सघन
जघनों वाली आपके मेरे हृदयमें व्याप्त हो जानेपर दूसरी नायिका

समेतम्

दशम सर्गः

९५

के रहनेके लिये मेरे हृदय में स्थान ही नहीं रहता वह एक काम-
देवही धन्य है जो मेरे हृदय में प्रवेश करता है, इसलिये हे प्रिये !
मुदद आलिङ्गन का पात्र मुझे बनाईये ॥१॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वलिलबन्धनिविडस्तनपीडनानि ।

चण्डि ! त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण—
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥२॥

हे सुन्दरि ! आप मुझे निर्दयता पूर्वक दांतोंसे काटिये,
अपनी भुजारूप लताओंसे मुझे बांधिये और अत्यन्त कठोर अपने
स्तनोंसे दबा दीजिये, मेरे जैसे अपराधी के लिये यही दण्ड है, हे
चण्डि ! आप ही मुझे प्रसन्न करें क्योंकि चण्डाल कामदेवके
बाणोंसे मेरे प्राण जा रहे हैं ॥२॥

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गुरभ्रू-

र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ।

तदुदितभयभञ्जनाय यूनां

त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥३॥

हे चन्द्रमुखि ! आपकी तिरछी भौंहें तरुण पुरुषोंको मोहनेमें अति
मयङ्कर काले सर्पकी तरह हैं इन भौंहोंसे उत्पन्न मूच्छा वाले

युवकोंके भयके नाशके लिये आपकी अघररूपी सुधा ही सिद्ध सं
अर्थात् रामबाण (औषधि) है ॥३॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं

तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः।

सुमुखि ! विमुखिभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय

स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥४॥

हे कुशाङ्गि ! आपका मौनभाव मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे
तरुणि ! मीठी मीठी बातोंसे पंचम स्वरमें मुझसे बातें कर मेरे
हार्दिक संताप को दूर करिये, हे चारुवक्त्रे ! मेरी ओर जरा प्रेमसे
एक नजर देखिये, अब मुझे मत ठगिये, हे मुग्धे ! मैं आपका
अनन्य प्रेमी स्वयं आ गया हूँ ॥४॥

बन्धूकद्युतिवान्धवोऽयमघरःस्निग्धो मधूकच्छवि-
गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥५॥

हे चण्डि ! दुपहरियाके फूलके समान लाल लाल यह आपका
अघर, महुएके फूलके समान सुन्दर ये आपके चिक्कने गाल, नील
कमलोंकी कान्तिको चुरानेवाली आपकी ये आंखें तिलके फूलके

समेतम्]

दशम सर्गः

९७

समान आपकी यह नासिका विलक्षण शोभा दे रही है ।
हे कुन्द सदृश दांत वाली ! इस तरह कामदेव आपके ही मुखके
आश्रय से विश्वविजय करता है १ बन्धूक, २ मधूक, ३ नीलोत्पल
४ तिलपुष्प और ५ कुन्दरूप पांचो पुष्प-बाण आपहीके मुखपर
विराजमान हैं ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं

गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।

रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-

वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता । ६ ।

हे सुन्दरि ! आपकी आंखे मदसे भरी हुई हैं, आपका मुख
चन्द्रमाके समान है, आपका गमन देखने वालोंके मनको हरण
करने वाला, आपकी जांघे बेलके खम्भोंको भी जीत चुकी हैं, आपकी
रतिक्रीडा कलापूर्ण है, आपकी भौंहें सुन्दर और विचित्र रेखाकी
तरह हैं, हे तन्वि ! आश्चर्य है कि पृथिवीपर रहने पर भी आपमें
सुराङ्गनाओंके गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवल्यापीडेन सार्धं रणे

राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।

पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्

व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः ७

७

इति श्रीगीतगोविन्दे मानिनीवर्णने चतुश्चतुर्भुजो नाम
दशमः सर्गः ॥ १० ॥

कंसके हाथी कुवलायापीडके साथ युद्ध करते समय उसके कुम्भको भेदन करने वाले, राधाके उन्नत स्तनोंका स्मरण करने वाले, भयदायी हाथीको मृत्यु देखकर कंसको "जीतलिया जीतलिया" ऐसे कोलाहलोंको मचानेवाले, कार्य करनेवाले, श्रीकृष्ण भक्तों की प्रीतिको बढ़ावें ॥७॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके चतुर्भुजनामक दशम सर्ग की हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

—:०:—

एकादशः सर्गः ।

—:०:—

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
 गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
 रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
 स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ॥१॥

बहुत देरतक अनुनय विनय करके राधाको प्रसन्न करलेने पर, सन्ध्या के समय श्रीकृष्णके कुञ्जमें शयन करनेकेलिये चले जानेपर और दृष्टि को चुरानेवाले प्रदोष समयके आजाने पर एक सखीने अच्छे श्रृङ्गारसे सजी अतिप्रसुदित हृदयवाली राधासे कहा ॥१॥

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ॥२०॥

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणारचितप्रणिपातम् ।
 सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ॥
 मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥१॥

१००

गीतगाविन्दम्-

भाषाटीका-

हेमुग्धे ! मधुर वचनोंको कह कर आपके पैरों पड़नेवाले,
इस समय आपके अनुकूल मनोहर श्रीकृष्ण वैतके लतागृहमें
कीड़ाशयन पर पधारे हैं, इसलिये हेराधे ! उन मधुरिपु श्रीकृष्णके
समीप शीघ्र चलिये ॥१॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।

मुखरितमणिमञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ॥

॥मुग्धे०॥२॥

हे सघन जांघो तथा उभड़े हुए और कड़े कड़े स्तनोंवाली
प्यारी ! धीरे धीरे अपने शिथिल पैरोंको पृथिवी पर रखती
हुई तथा मणि नूपुरोंको बजाती हुई हंसकी चालसे श्रीकृष्णके
समीप चलिये ॥२॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।

कुसुमशरासनशासनवन्दिनि पिकनिकरे भज भावम्

॥मुग्धे०॥३॥

हे प्रिये ! युवतिजनोको मोहित करनेवाले श्रीकृष्णकी
वांसुरीकी ध्वनि सुनिये तथा कामदेवकी आज्ञाके प्रचारके लिये
बन्दीका काम करनेवाली कीकिलाओंके भावको भजिये ॥३॥

समेतम्]

एकादशः सर्गः

१०१

अनिलतरलकुवलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
 प्रेरणामिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम्
 मुग्धे० ॥ ४ ॥

हे करभोरु ! देखिये, इन लताओंका झुण्ड पवन द्वारा प्रेरित
 होकर चञ्चल पल्लवरूपी हाथोंसे जापको गमनकी प्रेरणा कर रहा
 है, इसलिये हे प्रिये ! विलम्ब न करें, जल्दी चलिये ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
 पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥
 मुग्धे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! यदि मेरे इस बातका विश्वास नहीं है, तो काम-
 देवके तरंगके वशीभूत होकर चलायमान और श्रीकृष्णके आलिं-
 गनको पहलेहीसे सूचित करनेवाले एवं मनोहर हाररूपी जलधारा
 वाले, कुम्भके समान अपने इन दोनों कुचों से पूछ लीजिये कि
 ये क्यों फुरफुरा रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम्
 चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥
 मुग्धे० ॥ ६ ॥

हे मानिनि ! सभी सखियोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो चुकी है कि आपका शरीर शक्तिरूपी संग्रामके लिए प्रस्तुत है, ऐसी अवस्थामें हे चण्डि ! लज्जाको त्यागकर प्रेमसे करवनी के शब्दको करती हुई आप संकेत स्थलकी ओर चलें ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
चलवलयकणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम् ॥
मुग्धे० ॥ ७ ॥

हे सुभगे ! कामदेवके बाणके समान सुन्दर नखवाले हाथ से लीलापूर्वक बड़े हाव-भावके साथ सखीका हाथ पकड़कर चलिये और कामदेव के वशीभूत श्रीकृष्ण के हाथके कड़ेके घुंघरुओं को बजाकर अपने आने की सूचना दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम् ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठत कण्ठतटीमविरामम् ॥
मुग्धे० ॥ ८ ॥

जयदेव कवि द्वारा कहा गया यह गीत रत्नों के हार को भी तिरस्कृत करने वाला, युवतियोंको उदासीन बनानेवाला भगवद्भक्तों के कण्ठमें सदा निवास करे ॥ ८ ॥

सा मां द्रव्यति वदयति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि ममागत्येति चिन्ताकुलः ।

समेतम्]

एकादशः सर्गः

१०३

स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः॥२॥

हे राधिके ! अत्यन्त अन्धकारमय लताकुञ्ज में विराजमान
आपके प्रिय कृष्ण चिन्ताकुल होकर सोचते हैं—वे राधा मुझे देखेंगी,
मेरे साथ मीठी-मीठी प्रेमपूर्ण बातें करेंगी, हर एक अंग का आलि-
ङ्गन कर प्रसन्न हो जायेंगी, तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीड़ा करेंगी,
इस तरह अनेक प्रकारके मनोरथों के मनमें उत्पन्न होते हुए वे
श्रीकृष्ण ध्यानमें आपको देखते हैं, देखकर कांप जाते हैं, पुलकित
गात हो जाते हैं स्वापिक समागमसुख का अनुभव करने लगते
हैं, रतिक्रमसे पसीने पसीने हो जाते हैं तुह्यारी भावना से उठ-
कर खड़े हो जानेपर तुमको सामने न पाकर मूर्छित हो जाते हैं २

अदणोर्निक्षिप कज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।
धूर्तानामभिसारसत्वरहदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्तं नीलनिचोलचारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥३॥

हे सखि राधे ! आंखोंमें काजल, कानोंमें मोरपंखके गुच्छे,
सिरमें नील कमलोंकी माला और कुचोंपर कस्तूरीके रससे पत्र-
रचना आदि द्वारा अपने को सजाकर श्रीकृष्ण के पास चलें। प्रायः
अभिसार के लिये अत्यन्त आतुर धूर्तनायिकाओंके लिये संकेतस्थानमें

जानेके लिये उपर्युक्त आभूषणही है, क्योंकि निकुञ्जमें काले वस्त्र से सुन्दर नायिकाओं को फैला हुआ गाढान्धकार उनके सर्वाङ्गोको आलिंगन करता है ॥ ३ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-

मावद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ।

एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं

तत्प्रेमहेमनिकंषोपलतां तनोति ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! केसर की कान्ति के समान शरीरवाली अभिसारिकाओं के लिये मणिमञ्जरियों से चारों ओर रेखा किया हुआ, तमालपत्रोंके समान अत्यन्त नील, यह अन्धकार, प्रेमरूपी सुवर्णकी कसौटी है । जैसे सुनार सुवर्णकी परीक्षा कसौटीपर करता है, उसीतरह प्रेमी प्रेमिकाओंकी परीक्षा अन्धेरेमें करते हैं ॥ ४ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-

केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।

द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य

व्रीडामतीमथ सखी निजगाद राधाम् ॥ ५ ॥

उसके अनन्तर मालाओं, चमकदार सुवर्णकी करधनी, वाजूबन्द और कङ्कण आदिमें लगे हुए मणियोंकी कान्तिसे जगमगाते हुए

समेतम्]

एकादश सर्गः

१०५

लतागृहके द्वारपर श्रीकृष्णको देखकर लज्जावती राधासे एक
सखी बोली ॥ ५ ॥

वराटिरागे अडवताले अष्टपदी ॥

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने

विलस रतिरभसहसितवदने

प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ॥ ध्रुव ॥ १ ॥

क्रीडाके उत्साहसे प्रसन्नमुख वाली हे राधिके ! अतिसुन्दर
लताकुञ्ज रूप क्रीडागृहमें जाइये, और माधवके समीप जाकर
उनके साथ रमण करिये ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे

विलस कुचकलशतरलहारे ॥ प्रविश० ॥ २ ॥

कलशके समान स्तनोंपर चञ्चल मुक्ताहार धारण करनेवाली
हे राधे ! नवीन अशोकके पत्तोंसे रचित शय्यापर श्रीकृष्णके साथ
रमण करिये ॥ २ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ।

विलस कुसुमसुकुमारदेहे ॥ प्रविश० ॥ ३ ॥

फलों के समान सुकुमार शरीर वाली हे राधे फूलोंके ! समूह
से निर्मित अत एव पवित्र इस शयनगृहमें जाइये और श्रीकृष्णके
साथ आमोद प्रमोद कीजिये ॥ ३ ॥

चलमलयपवनसुरभिशीते ।

विलस रसवलितललितगीते ॥ प्रविश० ॥ ४ ॥

हे शृङ्गार रससे ओतप्रोत गीतगाने वाली राधे ! मलय-
पर्वत की वायु से सुगन्धित और शीतल इस प्रेममन्दिरमें जाकर
श्रीकृष्णके साथ बिहार करिये ॥ ४ ॥

विततबहुवलिनवपल्लवघने ।

विलस चिरमिलितपीनजघने ॥ प्रविश० ॥ ५ ॥

हे चिर कालसे मिली हुई और मोटी २ जांघवाली राधे !
फैलीहुई नानाभांतिकी लताओंके कोमल पत्तोंसे घने कुञ्जमें
जाकर अपने प्यारे कृष्ण की प्रेमिका बनिये ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे ।

विलस दशनरभसरसभावे ॥ प्रविश० ॥ ६ ॥

हे कामदेवके उद्वेग से उत्पन्न शृङ्गार रसमें अनुशाग रखने
वाली राधे ! पुष्प रसके आस्वाद से आनन्दपूर्वक झंकार करनेवाले
भौरोंके झुण्डवाले लताभवनमें जाकर प्रेम रस लूटिये ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे ।

विलस दशनरुचिरशिखरे ॥ प्रविश० ॥ ७ ॥

समेतम्)

एकादशःसर्गः

१०७

हे दांतोकी चमक दमक से शोभायमान शिखर मणिवाली
राधे ! अत्यन्त मधुर कोकिलाओं की वाणी से शब्दायमान
लतागृहमें प्रवेशकर श्री कृष्णके साथ विहार करिये ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे ।

कुरु मुरारे ! मङ्गलशतानि ॥

भणितजयदेवकविराजराजे ॥ प्रविश० ॥ ८ ॥

हे कृष्णचन्द्र ! पद्मावती के सुखसमूह का निर्माण करने
वाले कविराजोंमें भी श्रेष्ठ जयदेव कविके लिए सैकड़ों प्रकार के
मंगल का विधान करें ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः ।

कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधाभम्बाधविम्बाधरम् ॥

अस्याङ्गं तदलङ्कुरु क्षणमिहभूक्षेपलक्ष्मीलव-

क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ ६ ॥

हे राधिके ! आपको चिर कालतक चित्तमें धारण करने से
अधिक थके हुए, कामदेवसे अत्यन्त सताये हुए श्रीकृष्ण,
आपके सुधारससे परिपूर्ण कुन्दरु फलके सदृश लाल-लाल
अधरोंको पानकरना चाहते हैं, इसलिये हे प्रिये ! इनकी
गोदको क्षणमात्र के लिये शोभित कर दीजिये, क्योंकि ये कृष्ण,
आपकी तिरछी भौहोंके इशारेपर खरीदे हुए दास के समान

आपके चरण कमलों की सेवा करनेवाले हैं। इसलिये इन श्रीकृष्ण के समीप जानेमें हिचकिचाहट कैसी ? ॥ १ ॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।

सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ ७ ॥

चञ्चल नयनी वह राधा, लज्जा और आनन्द के साथ अपने पायजेवर की मनोहर ध्वनि करती हुई उस लताकुञ्ज में चली गयी ॥ ७ ॥

बराडीरागे रूपकृताले अष्टपदी ॥ २ ॥

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।

जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ॥

हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।

सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् ॥ ध्रु १ ॥

राधाने, चन्द्र मण्डलको देखकर चञ्चल और ऊँचे तरङ्गवाले समुद्रके समान राधाके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे आनन्दित अनेक प्रकारके शृङ्गाररस के भावोंसे पूर्ण, समभाववाले चिर कालसे अपनी राधाके साथ विहार करनेकी इच्छारखने वाले हर्षसे आह्लादित मुखवाले और कामदेवके वासस्थानरूप कृष्ण को देखा ॥ १ ॥

समेतम्)

एकादश सर्गः

१०९

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम्
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् हरि० २

अत्यन्त सफेद फेनके समूहसे मिले हुए यमुना जलके प्रवाह
के समान, जानुपर्यन्त लटकते हुए अति शुभ्र मुक्ताहारको वक्ष-
स्थल पर धारण किये हुए श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥

हरि० ॥ ३ ॥

पीले रंगवाले परागसे व्याप्त नीलकमलके समान कोमल
शरीर पर पीताम्बर धारण किये कृष्णको राधाने देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितरतिरागम् ।

स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम्

हरि० ॥ ४ ॥

शरद ऋतुमें खिले हुए कमलके मध्यमें क्रीडा करनेवाले
दो खञ्जरीट पक्षियोंसे युक्त तालाबके समान चञ्चल नयनोंकी
कोरोंसे मनोहर मुख द्वारा युवतियोंमें रतिको अभिलाषा उत्पन्न
करनेवाले श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ४ ॥

११०

गीतगोविन्दम्-

भापाटीका-

वदनकमलपरिशीलनमोलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ।
 स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतिरतिलोभम् ॥
 हरि० ॥ ५ ॥

मुखकमलके देखने के लिए पासपर मिले हुए सूर्यके समान
 कुण्डलोंसे विभूषित, मुसकराहटकी छबिसे मनोहर और प्रफुल्लित
 अधर पल्लवों द्वारा रमणियोंको रतिमें लोभ उत्पन्न करानेवाले
 श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
 तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम्
 हरि० ॥ ६ ॥

चन्द्रकिरणोंसे मिले हुए मेघके मध्यभागके समान मनोहर
 पुष्पोंसे सुन्दर केशवाले, अन्धेरेमें उदित चन्द्रमण्डलके समान
 निर्मल और मर्यागिर चन्दनका तिलक किये हुए श्रीकृष्णको
 राधाने देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
 मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥
 हरि० ॥ ७ ॥

समेतम्)

एकादश सर्गः

१११

अत्यन्त रोमाञ्चित देहवाले, रति क्रीडाकी कलाओंसे अधीर,
मणियोंके किरण समूहसे प्रकाशमान, अलङ्कारोंसे सुन्दर शरीरवाले
श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवे द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरसुकृतोदयसारम् ॥
हरि० ॥ ८ ॥

हे भक्तों ! श्रीजयदेव कविके वर्णन किये हुए विभवकी अपेक्षा
द्विगुणित अलङ्कारोंसे युक्त और चिरकाल से सञ्चित पुण्योदयके
तत्वरूप श्रीकृष्णको चित्तमें धारण कर प्रणाम कीजिये ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनैवाद्गणोस्तरलतरतारं पतितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ ८ ॥

अतिप्रिय श्रीकृष्णके दर्शनके समय राधाके नेत्र, अपाङ्गोंका
अतिक्रमण करके कानतक चले गये इसी श्रमसे मानों उनके नेत्रों
से पसीना आनन्दाश्रुके रूपमें जलधाराके समान बहने लगा ॥ ८ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।

प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकृतसुभगं

सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥६॥

कान आदिके खुजलानेके वहानेसे अपनी मुस्कुराहटको रोकनेवाले चतुर सखीजनोंके लतागृहसे बाहर चले जानेपर पलंग पर बैठी हुई कामदेवके बाणोंके वशीभूत अतएव सुन्दर अपने प्रिय श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको देखने वाली मृगनयनी राधाकी लज्जा लज्जित होकर दूर चली गयी ॥ ९ ॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः

स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।

भुजापीडक्रीडाहतकुवल्यापीडकरिणः

प्रकीर्णसृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥१०॥

प्रचण्ड भुजदण्ड की क्रीडासे कंसके कुवल्यापीड नामक हाथी को मारनेवाले श्रीकृष्णके रक्तके बिन्दुओंसे व्याप्त भुजदण्ड की मानों विजयलक्ष्मीने प्रहस्य होकर पारिजातके फलोंसे स्वयं पूजाकी हो और कुवल्यापीडके संग्राम से हर्षित होकर स्वयं श्रीकृष्ण सिन्दूरसे उसको रञ्जित किये हों ऐसा श्रीकृष्ण का भुजदण्ड आपका कल्याण करे ॥ १० ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्य के सानन्दगोविन्दनामक

एकादशसर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

द्वादशः सर्गः

—)ॐ(—

गतवति सखिवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरशरवशाकृतस्फोटस्मितस्नपिताधरासु ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥ १ ॥

सखियोंके लताकुंजके बाहर चले जानेपर अत्यन्त लज्जाके कारण और कामदेवके वशीभूत होने से मुस्कुराहटसे युक्त अधरोष्ठ वाली तथा रतिक्रीडाके लिये सानुराग और नव पल्लव एवं कुसमों द्वारा अर्चित शय्याको बार-बार अवलोकन करनेवाली राधाको देखकर कृष्णने कहा ॥ १ ॥

विभासरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ २३ ॥

किसलयशयनतले कुरु कामिनि चरणनलिनविनिवेशम् ।
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ।
तणामधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके !

॥ ध्रु० ॥ १ ॥

११४

गीतगोविन्दम्-

[भाषाटीका-

हे कामिनि ! कोमल-कोमल पत्तोंसे बनी सेजके ऊपर
अपने चरण कमलोंको रखिये और आपके पदपल्लवके शत्रु ये
शय्या के पल्लव क्षणमात्र आपके पदपल्लवों द्वारा प्राप्त
परामवका अनुभव करें, हे प्रिये ! मुहुर्त्तमात्रके लिए नारायणके
अनुकूल हो जाइये ॥ १ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।

क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम्

॥क्षणा० ॥२॥

हे प्रिये ! आप बहुत दूरसे आयो हैं इसलिये मैं अपने
हाथोंसे आपके चरणोंको दबाता हूँ । कृपया, मेरे ही तरह इन
नूपुरोंका भी आदर कीजिये । इनको शय्यापर उतार दीजिये ॥२

बदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।

विरहमिवापनयामि पयोधररोधकसुरसि दुकूलम्

॥क्षणा० ॥३॥

हे राधे ! आप अपने मुखके समान स्थित चन्द्रसे निकले
अमृत तुल्य अनुकूल वचन कहिये तथा विरह के हटाये जानेकी
तरह आपके कुर्चों पर के वस्त्रको मैं हटाता हूँ ॥ ३ ॥

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

११५

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमन्यदुरापम् ।
 मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम्
 ॥क्षण० ॥४॥

हे राधे ! प्रियके आलिंगन के लिए सन्नद्ध तथा रोमांचित
 और अन्योंको दुर्लभ कलशके सदृश इन स्तनोंको मेरे
 वक्षःस्थलपर रखकर मेरी काम पीड़ा हरिये ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम् ।
 त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम्
 ॥क्षण० ॥५॥

हे भामिनि ! तुम्हारेमें आसक्त, विलासहित विरहरूप
 अग्नि से झुलसे शरीरवाले, मरे हुए की तरह इस सेवकको अपने
 अधररूपी अमृतका पानकर त्कर जीवित करो ॥ ५ ॥

शिमुखि ! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम् ।
 मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम्
 ॥क्षण० ॥६॥

हे चन्द्रानने ! अपने कण्ठके ध्वनिके समान करधनीके
 मणियोंको बजाइये, तथा कोयलके ध्वनिसे व्यथित मेरे कानोंके
 दुःखको शान्त करिये ॥६॥

११६

गीतगोविन्दम्-

(भाषाटीका-

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
मीलितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम्
॥क्षण० ॥७॥

हे सुन्दरि ! सर्वथा व्यर्थके क्रोधसे उद्वेजित मुझे देखनेके लिए आपके ये नेत्र इस समय लज्जायुक्त हो बन्द हो रहे हैं, इस लिये विश्राम कीजिये, रति खेदको छोड़ दीजिये ॥७॥

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम्
॥क्षण०॥८॥

पद-पद में श्रीकृष्णके आनन्दका वर्णन करने वाला जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत रसिक जनोमें सुन्दर शृंगार रसके आनन्द को उत्पन्न करे ॥८॥

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडास्तेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्वभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ॥१॥

उन श्रीकृष्ण तथा उनकी परम प्यारी राधाकी रतिक्रीड़ा जब आरंभ हुई, उस समय प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए रोमाञ्चका होना विघ्न मालूम होता था, क्रीड़ाके अभिप्रायसे देखनेके समय

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

११७

पलक गिरनाभी विघ्नभूत लगता था, अधरामृत पान करते हुए केलिकथा भी कष्ट—दायिका प्रतीत होती थी, काम कलापूर्ण समर में उत्पन्न आनन्द भी उस समय सुरतरूपी समरमें विघ्नसा ही लगता था ॥१॥

दोभ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥२॥

राधिकानेके हाथोंसे बँधे, स्तनोंके भारसे दबे, नखाँसे क्षत किये गये, दन्तक्षत किये अधरवाले, कटिसे ताड़ित, केशोंको हाथोंसे पकड़कर नमाये, अधरों के मधुपानसे मोहित कृष्ण लोकोत्तर आनन्दको प्राप्त हुए । इसी कारणसे कामदेवकी गतिको कुटिल कहा गया है ॥२॥

माराङ्के रतिकैलिसङ्कुलरणारम्भे तथा साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वत्नो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्धयति ॥३॥

सुरतक्रीडारूपी संग्रामके आरम्भ हो जानेपर राधिकाने साहससे पतिपर विजय प्राप्त करनेके लिये कुछ समयतक कृष्णके

वक्षःस्थलपर सम्भ्रम पूर्वक विपरीत रति प्रारम्भ की, उस समय उनकी जांघें स्तब्ध हो गयीं, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती धड़कने लगी परमानन्दके समय आखें ठंपने लगीं, ठीक ही है, स्त्रियोमें पौरुष कहां से आ सकता है ॥३॥

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितसूस्तसूजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥४॥

नखक्षत चिह्नित राधाके वक्षःस्थल, रात्रिके जागरणसे लाल लाल उनकी आखें, चुम्बनसे नष्टलालिमा वाले अधरोष्ठ, बिखरे और शिथिल बन्धन वाली मालायुक्त केश, कमरकी करधनीके समीपके खुले हुए वस्त्र आदि प्रातःकाल देखकर श्रीकृष्णका चित्त कामदेवके बाणोंसे बैधा जानेलगा ॥४॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाः स्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥५॥

हे क्षीरसागरके तीरपर स्वयंवरके लिये आई हुई सुन्दरि ! आपको न पा करके ही मृडानीपति शङ्कर ने विष पी लिया था

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

११९

ऐसा मेरा अनुमान है । इस प्रकारकी अपनी पूर्व कथानी स्मृतिसे अन्यमनस्क राधिका के कुचोंपरका वस्त्र हटाकर प्रसन्न होनेवाले श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करें ॥५॥

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
स्पष्टा दृष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्ची काञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितं सुगधरेयं धुनोति ॥६॥

जिनका केशपाश बिखर गया है, अलकें चञ्चल हो गयीं हैं, दोनों गाल पसीनेकी बूँदोंसे गीले हुए हैं, ओष्ठोंके ऊपर दन्तक्षत स्पष्ट विदित हो रहे हैं, कलश के समान स्तनों की शोभासे मुक्ताहार पराजित होगये हैं, करधनीं सिकुड़ी हुई एक ओर पड़ी है—प्रातः अपनी ऐसी अवस्था पर राधाने, अपने हाथोंसे कुचों और जघनको ढाँक अपने रूपको देखती और साधारण फूलोंकी मालाको धारण करती हुई भी वह श्रीकृष्णको आनन्दकारिणी मालूम पड़ी ॥६॥

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकैलिकाकविकसदन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥७॥

कामकेलिकी उत्कण्ठासे उत्पन्न शिथिल स्वासोच्छ्वासके कारण कुछ हिलते हुए कुचोके आलिङ्गनसे, हर्षके अतिरेकसे कुछ बन्द नेत्रवाले और सुन्दर हास्यसे युक्त तथा लगातार सीत्कारोंके वश अव्यक्त एवं व्याकुलतासे उत्पन्न शब्दोंसे विकसित दांतोकी कान्तिसे प्रक्षालित अधरवाले मुखका पान (चुम्बन) विले। भाग्यवान करते हैं । ७॥

अथ निर्गतबाधा सा राधा स्वाधीनभर्तृका
निजगाद रतिक्लान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया । ८॥
इति सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तस्निग्धाङ्गी ।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥६॥

उपके बाद शान्त काम बाधा वाली, रतिकं अन्तर्पे नितान्त स्निग्ध अङ्गवाली स्वाधीनभर्तृका वह राधा अपने शृङ्गार करनेके लिए रति श्रम शान्त प्रिय कृष्णसे बोली । सम्मानिनी रतिश्रमसे थकी वह राधा आनन्द और आदर पूर्वक अपने प्रिय श्रीकृष्णको बोली ॥८-९॥

रामकरीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥४॥

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने

॥ध्रु०॥१॥

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

१२१

हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीकृष्णके रतिक्रीड़ा करते हुए राधाने कहा--“हे श्रीकृष्णचन्द्र ! चन्दनके समान अति शीतल अपने हाथोंसे कामदेवके मङ्गल कलश की तरह मेरे स्तनोंपर कस्तूरीसे पत्र रचना कीजिये ॥१॥

अलिकुलगञ्जनसज्जनकं रतिनायकसायकमोचने ।

त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रिय लोचने

॥निज०॥२॥

हे प्रिय पीताम्बरधारिन् ! कामदेवके बाणोंको छोड़नेवाले, मेरे नेत्रोंमें भ्रमरोंके समूहके समान आप अधरोंके चुम्बन से मिटे हुए मेरी आँखोंके कज्जलको उज्ज्वल करिये ॥२॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविलासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले ।

मनसिजपाशविलासधरे शुभवंशे निवेशय कुण्डले

॥निज०॥३॥

हे प्रियतम ! नेत्ररूपी हरिणीके विलासको रोकनेवाले मेरे कानोंमें कामदेवके पाश समान कुण्डल पहनाइये ॥३॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे ।

जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनं कमलकं मुखे

॥निज०॥४॥

१२२

गीतगोविन्दम्-

(भाषाटीका-

हे मनोहरवेषधारिन् श्रीकृष्ण ! जिसके ऊपर भ्रमर उड़ रहे हैं ऐसे मनोहर तथा स्वच्छ कमलोंको जीतनेवाले, आनन्दको देनेवाले मेरे मुखपर गिरनेवाले सुन्दर अलकावलीको आप गूथिये ॥४॥

मगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे ।
विहितकलङ्ककलं कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे
॥ निज० ॥ ५ ॥

हे कमल के समान मुखवाले श्रीकृष्ण ! रति के श्रमसे उत्पन्न स्वेदविन्दु से युक्त अर्धचन्द्र के समान मेरे भालपर कलङ्करेखाके समान कस्तूरीसे सुन्दर तिलक लगाइये ॥ ५ ॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे ।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे
॥ निज० ॥ ६ ॥

हे मान को देनेवाले श्रीकृष्ण ! रति के समय शिथिल हुए मोरपङ्क्तिके समूहके सदृश सुन्दर कामदेव की पताका के समान मेरे केशपाश में फूल गूथिये ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे ।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ॥
निज० ॥ ७ ॥

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

१२३

हे प्राणनाथ ! परमानन्दमय और कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीकी कन्दाररूपी मेरे सुन्दर जघनों पर आप रत्नोंकी करधनी, वस्त्र और आभूषण पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥

निज० ॥ ८ ॥

हे भगवद्भक्तों ! भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानरूपी अमृतसे कलियुगी पाप के नाशक, कल्याणप्रद और अलङ्कार के समान अनोहर जयदेवकवि द्वारा रचित इस गीतकी ओर अपने अन्तःकरणोंको लगाइये ॥ ८ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च सृजा कवरीभरम् ।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-

विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥ १

हे प्राणप्रिय ! आप मेरे स्तनोपर सुन्दर पत्र रचना कीजिये, गालों पर लताबेल आदि की रचना कीजिये, कमरमे करधनी पजेव पहनाइये, मेरे केशपाश में फूलोंको गूथिये, हाथोंमें कड़े पहनाइये पैरोंमें पैजेव पहनाइये, इसतरह राधा से कहे गये पीताम्बरधारी कृष्णने वैसा ही किया ॥ १ ॥

पर्यङ्कोकृतनागनायककृष्णश्रेणीमणीनां गणो
 सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कलनया त्रिभ्रद्वपुर्विक्रियाम् ।
 पादाम्भोरुहधारिवारिधिमुतामङ्गणां दिदृक्षुः शतैः
 कायव्यूहमिवाचरन्नुपचिताकृतो हरिः पातु वः ॥ २ ॥

शय्यारूप शेषनाग क्लृप्तनामएडल के मणियों में प्रतिबिम्बित
 अनेक वेषोंको धारण करनेवाले, चरणसेवाकरनेवाली
 लक्ष्मीको सैकड़ों नेत्रों से देखने की इच्छा रखनेवाले काम-
 भावयुक्त भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
 यच्छृङ्गारविवेकतत्परचनाकाव्येषु लीलायितम् ।
 तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः

सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥ ३ ॥

गानविद्यामें जो चतुरता है श्रीकृष्णचन्द्रजीका जो ध्यान है,
 तथा शृङ्गार रस के वास्तविक स्वरूप की रचना वाले काव्योंमें
 जो भगवल्लीला का वर्णन है उन सबको, श्रीकृष्णमें एकाग्रचित्त
 रखनेवाले पण्डित जयदेवकविकृत गीतगोविन्दसे सीखें ॥ ३ ॥

साध्वी माध्वोकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्क-
 शासि । द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर

समेतम्)

द्वादशः सर्गः ।

१२५

नीरं रसस्ते । माकन्द ! कन्द कांताधर धरणितलं
गच्छ यच्छांति भावं । यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह
जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ४ ॥

जयदेवकवि अपने काव्यकी प्रशंसा में कहते हैं—“इस
लोक में जबतक शृङ्गार-रस-प्रधान काव्य स्थित है, तबतक हे
माध्वीक ! तेरी चिन्ता व्यर्थ है—अर्थात् शृङ्गार रस के काव्य की
मधुरिमाके सामने तेरी मिठास फीकी है । हे शर्करे (शक्कर)
तुम इसकी तुलना में कठिन हो । हे द्राक्षे ! तुम्हें इसके सामने
कौन देखेगा ? हे अमृत ! तुम इसके सामने मृत तुल्य हो । हे
क्षीर ! तुम्हारा स्वाद इसके सामने पानी सा है । हे माकन्द !
तुम अब शोओ ! हे प्रियतमाके अधर तुम भी पाताल में चले
जाओ । अर्थात् मेरे काव्यरसकी तुलना में उपर्युक्त सभी वस्तुएं
नीस हैं ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ।

पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये जयदेवपण्डितकृतौ
सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

१२६

गीतगोविन्दम्

माता राधादेवी पिता श्रीभोजदेवके पुत्र श्रीजयदेवकविकी
 यह गीतगोविन्द कविता पराशरादिक पूर्व कवियोंके कण्ठमें
 समर्पित हो ॥ ५ ॥

इति मोरेश्वरशर्मा देशमुख विरचित भाषाटीका-
 नुवादित गीतगोविन्दकाव्य समाप्त ।



राधाविनोदकाव्यम् ।



मालीनो घनमाली मालीनो वनमाली

मालीनो वनमाली मालीनोऽवतु माली ॥१॥

विधुसुहृद्विरहानलपीडिता विधुसुहृत्तरलानिलपीडिता ।

विधुसुहृद्ददनाऽनिलपीडिता विधुसुहृत्सुगिरोऽकिरदीडिता ॥२॥

उदयते दयते दयते शशी सखि करैरकरैस्तिमिराकरैः ।

दिशमिमां चर मां चरमारमं कमलकोमललोलविलोचनम् ॥३॥

कुमुदबन्धुरबन्धुरबन्धुरः स तनुतेऽतनुते तनुते ततः ।

हिमकरोऽहिमतां हिमतां मतां किमनु मां सदृशंसदृशं विधोः ॥४॥

कमलिनीमलिना मलिनोऽलिना विचलताच लतासुलताशुभाम् ।

विधुतमां विधुतां विधुभानुभि-नयनयोरनयोर्नयसीनयोः ॥५॥

सखि विभाति विभाऽतिविभाऽविभा न सरसीसरसारससारसैः ।

अलिकुलैर्विधुना विधुता धुता विनमदब्जमुखीविमुखी स्थिता ॥६॥

कुमुदिनीदयितो दयितोनतां निजकरैरकरैर्दहति स्फुटम् ।

यदयमेकपदे विपदेऽभव-द्विकचपुष्करिणीहरिणीदृशः । ७॥

विधुरिता धुरिता धुरितादहन् विधुरयं जनितो जनितोऽङ्गभृत् ।

इह तदक्षिभते क्षिगतेऽब्जिनी रविमतिर्विमतिर्निमिमील सा ॥८॥

मलयपन्नमपन्नगमण्डली-कवलितो वलितो नु वनानिलः ।

अदयमङ्गमदङ्ग मदङ्गकं दहति यद् भ्रमयद् भ्रमयन्नयम् ॥९॥

अयि रसालवनी नवनीरनी-रनवनी नवनीपवनीवती ।

(२)

अलिकुलालिकुलाऽलिकुलाकुला प्रतिहि मामहिमामहिमा हिमा १०
 बकुलमाकुलमालि परागितं मधुपरागपरागपरालिभिः ।
 विशदशारदशारदशारदं शशकलङ्ककलङ्ककलङ्कितम् ॥११॥
 नवमशोकमशोकमशोकदे सुरभितारभितालिरतारतम् ।
 सखि समाश्रयमाश्रयमाश्रयः कमलिनीमलिनीप इवाऽगतः ॥१२॥
 सखि हिताऽऽसिमतासिमतात्थ मां नवमशोकमशोकमशोकदाम् ।
 तदिह मामव मामव माममां व्रज हरिं नवनीरदनीरदम् ॥१३॥
 इति सखीगदिताऽगदिताऽदिता-नवनराय वराय वराय वा ।
 इति गिरं कलयाकलया कला पटुगिरा मृदुता मृदुतादुता ॥१४॥
 मलयजं तनुतेऽतनु ते तनौ सहचरी नलिनी नलिनीदलम् ।
 सुनयनाऽनलदं नलदंच सा तदपि सीदति सीदति बन्धुता ॥१५॥
 समुदितेऽमुदितेऽमुदितेक्षणे हिमकरेमकरेनकरे श्रुती ।
 पिकरवेऽवरवेवरवेतिसा हरिणलालंलालंलालंलालं ॥१६॥
 न सहते सहते सहते सखी तव वियोगवियोगमयोगहृत् ।
 सपदि तां तरुणीं सरणिं मणिं किरतु नाम नवंनवनीविजम् ॥१७॥
 अथ तया कलया कलया शुभां वनजदामजदामजदीप्तिमान् ।
 हरिगात्तमगात्तमगाच्च सा मुदमतीवमतीवदृशोः स्थितम् ॥१८॥
 रामचन्द्रकविना कविनाऽदः पूरुषोत्तमसुतेन सुतेन ।
 राधिकाहृदयशोकदमासी-द्राधिकाहृदयशोकदमासीत् ॥१९॥
 इति श्रीपुरुषोत्तमात्मजजनार्दननन्दनरामचन्द्रकविकृतं
 राधाविनोदाख्यं काव्यं समाप्तम् ॥

हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें

दशवर्षीय पञ्चाङ्ग स० २००४ से २०१४ तक	१०)
मनुस्मृति भाषा टीका	४)
निर्णयसिन्धु परिशिष्ट संस्करण सहित	८)
एकादशी माहात्म्य भाषाटीका	३)
मुहूर्तचिन्तामणि भाषाटीका	३)
साजिक नीलकण्ठी	३)
श्री शिक्षोपयोगी नारी धर्म विधान	४)
चूटी प्रचार वैद्यक, वैद्यक का अपूर्व ग्रन्थ	४)
गण्ड पुराण भाषाटीका	३)
विवाह पद्धति भाषाटीका	III=)
बृहत्स्तोत्र रत्नाकर	४)
असली लोकशास्त्र पदा	४)
माधवनिदान भाषाटीका	६)
माघमास माहात्म्य भाषाटीका	४)
कार्तिकमास माहात्म्य भाषाटीका	३)
प्रेतमंजरी भाषा टीका	१II)

पुस्तक मिलने का पता—

बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर,
 घर—राजादरवाजा, दुकान—कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

आमनाय-मंडल।८०-११
नरसिंह, नरसिंह
नरसिंह

